उपवास से जीवन रक्षा

●

हर्बर्ट एम० शेल्टन

● उपवास भारत की परम्परा में एक धार्मिक अनुष्ठान बन गया है। उसके प्रति विशेष आदर की दृष्टि बनी हुई है। उपवास को एक प्रकार का तप माना गया है। लेकिन आज अधिक जरूरत उपवास को सहज, जीवनोपयोगी और आरोग्य-प्राप्ति का साधन मानने की है।

● प्रस्तुत कृति के लेखक एक अमेरिकन डॉक्टर हैं, जो प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास करते हैं और जिन्होंने उपवास के द्वारा सैकड़ों रोगों से लोगों को मुक्त किया है।

● इस पुस्तक में ३४ प्रकरण हैं। उपवास की महत्ता तथा विभिन्न प्रकार के सरल-जटिल रोगों में उसके चमत्कार का विवरण पाठकों को एक ओर आश्चर्य-चकित करेगा तो दूसरी ओर उनमें अपने स्वास्थ्य के प्रति दृढ़ता का भान भी उत्पन्न करेगा।

●

मूल्य

विनोबा

निर्मला देशपांडे
द्वारा
संपादित और संकलित

१९५५

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी

प्रकाशक :

अ० वा० सहस्रबुद्धे

मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,

वर्धा (म० प्र०)

दूसरी बार १०,०००

कुल प्रतियाँ १३,०००

अगस्त, १९५५

मूल्य : आठ आना

मुद्रक :

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस

प्रस्तावना

•

कुमारी निर्मला देशपांडे एक ऐसी सेविका हैं, जिनका हृदय निर्मल है, जो विद्वान्, नम्र एवं ज्ञानजिज्ञासु हैं। भूदान-यज्ञके विश्वव्यापी कार्यमें अपनी सेवा समर्पितकर उन्होंने पू० विनोबाजीके साथ एक सालतक यात्रा की है। इस बीच पू० विनोबाजीके भाषाणोंमें जो वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, भागवत आदि ग्रंथोंके भारतीय संस्कृतिके वचन आते रहे तथा विनोबाजी उनपर उस-उस समय जो विवरण करते रहे, वह सब उन्होंने अपने लिए बड़ी निष्ठासे संक्षेपमें लिख लिया। उन सब छोटे-बड़े संस्कृत-वचनोंका स्वाभाविक रूपसे एक 'शतक' बन गया है। कहीं १०८ का, कहीं १२० का तो कहीं १२५ का 'शतक' होता है। उसी प्रकार यह भी शतक कुछ बड़ा-सा है।

इस 'वचन-शतक' का उस-उस समय जो कुछ विवरण किया गया था, उसको उन्होंने स्मरणकर लिख रखा था। इसलिए इसे पू० विनोबाजीका प्रामाणिक विवरण तो नहीं कहा जा सकता। 'स्मरण' के साथ-साथ विस्मरण, अर्धस्मरण, अन्यस्मरण आदि बातें भी आ ही जाती हैं और शायद इसीलिए उसमें एक प्रकारका माधुर्य निर्माण होता है। नदी बहती है तो जगह-जगहपर कई पत्थर होते हैं, जिनके कारण उसका स्वरूप कुछ भिन्न-भिन्न-सा दिखाई देता है। परन्तु उन पत्थरोंके हृदयमें करुणा, जीवन भर देनेके लिए ही उसमें पृथक्त्व पैदा होता है। उसी तरह यह वचन-विवरण स्वाभाविकतया विभक्त-सा है, फिर भी उसमें जो भक्तिकी माधुरता है, वह अनमोल है।

एक तो यज्ञकी महान् भूमिका, फिर उसके साथ गंगा-यमुनाके प्रदेशकी पवित्र यात्रा और फिर पू० विनोबाजीके सहज विवरणमेंसे निर्माण हुए ये वचन—इस तरह वास्तवमें यह एक 'त्रिवेणी-संगम' ही है। इसलिए इस वचन-शतकका शीर्षक 'त्रिवेणी' अनुरूप ही है। इसको प्रकाशित करनेमें कु० निर्मला देशपांडे का यही एक अत्यंत निर्मल उद्देश्य है कि इससे अपने साथी कार्यकर्ताओंको कुछ सहायता हो । इसमें कोई संदेह नहीं कि वह उद्देश्य तो सफल होगा ही, पर साथ ही इसमें 'मज्जन' करनेवालोंको उसी समय तुलसीदासजीका बताया फल भी प्राप्त होगा :

मज्जन फलु पेखिय ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥

परंधाम-आश्रम
पवनार, २५-२-'५५

—शिवाजी न० भावे

त्रि वे णी

साम्ययोगका आधार

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

आत्माको सर्वभूतोंमें, आत्मामें सर्वभूत भी ।
देखता योगयुक्तात्मा समदर्शी सभी कहीं ।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।

मुझे जो सबमें देखे, सबको मुझमें तथा ।
मुझे न वह अप्राप्त, मैं अप्राप्त नहीं उसे ।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।

सर्वभूतस्थ मुझको जो योगी एक हो भजे ।
मुझीमें बर्तता है सो सर्वथा बर्तता हुआ ।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।

आत्मोपम सभीको जो सर्वत्र समबुद्धिसे ।
सुख हो दुःख हो देखे, योगी परम है वही ।।

——गीता, अध्याय ६, श्लोक २९ से ३२.

: १ :

साम्ययोगका तत्त्वज्ञान

गीताके छठे अध्यायके २९ से ३२ तकके 'श्लोक–चतुष्टय' में 'साम्य-योगी समाज' का तत्त्वज्ञान संक्षेपमें आ गया है। उन श्लोकोंमेंसे मैं निम्नलिखित निष्कर्षपर पहुँचता हूँ:

(१) समाजमें किसी भी सत्ताका शासन न हो। सद्‌विचारका अनुशासन हो।

(२) व्यक्तिकी सब शक्तियाँ समाजको समर्पित हों। समाजकी ओर-से व्यक्तिको विकासके अवसर प्राप्त हों।

(३) ईमानदारीसे, शक्तिके अनुरूप की गयी सब तरहकी सेवाओंका नैतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्य समान माना जाय।

इतनेमें ही मैं सन्तोष कर लेना चाहता हूँ।

: २ :

धनकी तीन गतियाँ होती हैं: पहली दान, दूसरी भोग और तीसरी नाश—'दानं भोगो नाशः।' तुलसीदासने कहा है—'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।' संपत्तिके ये तीन मार्ग हैं: या तो आप खाएँ, भोगें या दान करें, या फिर वह नष्ट हो जायगी। किसीके पास हजारों एकड़ जमीन है, तो वह इतना तो खा नहीं सकता। उसका पेट कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसमें चार हजार एकड़ जमीनकी फसल समा नहीं सकती। मैं तो कहता हूँ कि जितना खा सकते हैं, उतना जरूर खाना चाहिए। पेटभर खाएँ, लेकिन पेटोभर रखनेकी आशा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि बाकीका जो रख लोगे, उसपर मेरा हक होगा, या कम्युनिस्टोंका, या डाका डालनेवालोंका।

'दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।'

यह भर्तृहरिका वाक्य है। तो, जितना खुद खा सकते हो, उतना खाओ, जितना मुझे दे सकते हो, दो और इसपर भी आप कुछ बचाकर रखेंगे तो डाका

डालनेवाले ले जायँगे। पैसेके लिए चौथा प्रकार हो ही नहीं सकता। इसलिए श्रीमान् लोगोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे दयालु बन और देते ही जाएँ।
२२-४-'५१

—सिवन्नागुड़ा (तेलंगाना)

: ३ :

मने जो 'दान' शब्द चलाया है, उसपर कई लोग (शिक्षित) आक्षेप करते हैं। लेकिन वे उस शब्दका सही मतलब नहीं जानते। शंकराचार्यने लिखा है:

'दानं संविभागः।'

दान यानी सम-विभाजन। दान मनुष्यका नित्य-कर्तव्य है। नित्य-दानमेंसे सम्यक् विभाजन होता है। यदि हम अपनी संस्कृतिके शब्दोंसे विहीन हो जायेंगे और पश्चिमके लोगोंकी टीका मंजूर करेंगे तो हम अपनी बहुतसी शक्ति खो देंगे। यज्ञ, दान और तप मनुष्यके त्रिविध कर्तव्य हैं। यदि हम ये शब्द छोड़ेंगे तो भारतका जीवन शुष्क हो जायगा। यहाँ जिन्होंने काम किया है, वे सब हमारी संस्कृतिमें पले हुए थे। गीतासे सबको बल मिला है। पुराने शब्द छोड़नेसे अहिंसक क्रान्ति नहीं होती।
१४-४-'५१

—सेवापुरी

: ४ :

आप लोग जमीन कितनी देते हैं, इसकी मुझे फिक्र नहीं है। ज़मीन तो जहाँ थी वहीं पड़ी है और वह जिनकी है, उनके पास पहुँच चुकी है। जैसा कि भगवान्‌ने गीतामें कहा था:

'तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥'

'अर्जुन, ये सब मर चुके हैं। तुम सिर्फ निमित्तमात्र हो।' वही भगवान् आज कह रहे हैं कि जमीन तो गरीबोंको मिल चुकी है। श्रीमान् लोग सिर्फ निमित्तमात्र बनें। बेजमीनोंके पास जमीन पहुँचानेमें वह मुझे भी

निमित्तमात्र बनाना चाहता है—श्रीमानों और जमीनवालोंको प्रेरणा देनेके लिए। लोग कहते हैं कि आज दो सौ एकड़ जमीन यहाँ मिली है। लेकिन मैं इतना भोला नहीं हूँ कि यह सच मान बैठूँ। क्योंकि जैसा कि मैंने अभी कहा है, जमीन तो सबकी सब गरीबोंकी हो चुकी है। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि गरीबोंके पास सिर्फ जमीन पहुँचे; बल्कि यह भी चाहता हूँ कि वह यज्ञके रूपमें पहुँचे। इसलिए जमीनका हस्तान्तरण मुख्य प्रश्न नहीं, वह ठीक ढंगसे हस्तान्तरित हो, यही मुख्य प्रश्न है। और यही कार्य भगवान् मेरे जरिये कराना चाहते हैं। इसलिए भाइयो, मेरा विचार आप समझ लीजिए ताकि जो विचार मुझे प्रेरणा दे रहा है, वह आपको भी प्रेरणा दे सके।

१८-३-'५२ —गोरखपुर

: ५ :

मैंने तेलंगानामें देखा कि जमीनका मसला अहम मसला है। उसे हल करनेके लिए कई जगह खेतिहर-मजदूरोंके आन्दोलन चले। तेलंगानामें कम्युनिस्टोंने भी एक आन्दोलन चलाया। लेकिन उनका तो तरीका ही बेढंगा है। मैं नहीं मानता कि इस तरीकेसे दुनियाका भला हुआ है और होगा भी नहीं। भारतको यह तरीका नुकसान पहुँचायेगा। भारतकी एक विशेषता है, हमारा अपना एक विशेष तरीका है। अगर कोई कहे कि जबर्दस्तीसे जल्दी जमीन मिलेगी, तो मैं कहूँगा कि मैं आहिस्ता-आहिस्ता ही जमीन प्राप्त करना चाहूँगा और अपने ही तरीकेसे प्राप्त करना चाहूँगा, हिंसक तरीकेसे नहीं। अहिंसाका यानी सर्वोदयका तरीका ही भारतीय संस्कृतिका तरीका है।

घीके डिब्बेको आग लगाना और वेदमंत्रोंके साथ यज्ञमें घीकी आहुति देना, इन दोनों प्रक्रियाओंमें घी तो जलेगा ही; पर एकसे भावना जलेगी, दुनिया खत्म होगी और दूसरेसे वह पुनीत होगी। हिंसक तरीकेसे एक मसला हल करने जाते हैं तो दूसरे कई मसले निर्माण होते हैं। जहाँ हिंसक तरीका आया, वहाँ तकलीफ आयेगी ही। हमने आजादीके लिए जो तरीका अपनाया, वह यहींपर अपनाया गया, क्योंकि वह इस देशकी सभ्यताके अनुकूल

था। हमें वैसे नेता भी मिले। उसी तरह दूसरे मसले शुद्ध तरीकेसे हल करने चाहिए।

उपनिषदोंमें ऋषि कहता है:

'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।'

'हे अग्निदेव, हमें सरल पंथसे ले जाओ, बुरे रास्तेसे नहीं। केवल लक्ष्मी नहीं चाहिए, सुपंथ चाहिए।' कुराननें कहा है कि हमें केवल सीधी राह चाहिए। गलत राहसे हम अपने मुकामपर नहीं पहुँचेंगे। ऐसा भास होगा कि हम जन्नतमें पहुँचे हैं, लेकिन असलमें तो हम जहन्नुममें ही जायंगे। इसीलिए हम सीधी राह—सुपंथ—लेकर ही आदर्शकी तरफ पहुँचें।

१-५-'५२ —फैजाबाद

: ६ :

अगर हमने कहा कि गरीबोंको समता चाहिए, तो दूसरे कहते हैं कि न्याय करना गलत नहीं है, लेकिन इससे जमीनके छोटे-छोटे टुकड़े बन जायेंगे और यह ठीक नहीं होगा। याने जहाँ हम 'समता' की बात करते हैं, वहाँ वे 'विषमता' की बात तो नहीं करते, परन्तु 'क्षमता' की बात खड़ी कर देते हैं। क्योंकि विषमताको माननेवाला टिक नहीं सकता। प्रकाशके सामने अंधकार टिक नहीं सकता। रामके खिलाफ रावण टिक नहीं सकता। परन्तु अर्जुनके खिलाफ भीष्मका नाम लेकर खड़े हो जानेसे युद्ध हो सकता है। एक अच्छे शब्दके विरोधमें दूसरा अच्छा शब्द लानेसे दोनोंमें युद्ध हो सकता है। राम-रावणको लड़ाई अजीब थी, जैसे सूर्य और अंधकारकी। अंधकारके समूह सूर्यपर टूट पड़े हैं और फिर सूर्य-किरणोंने उनको नष्ट किया, यह कहना केवल वर्णन ही है। वास्तवमें सूर्यके सामन अंधकार टिक ही नहीं सकता। इसी तरह समताके सामने विषमता टिक ही नहीं सकती। इसीलिए ये लोग 'क्षमता' खड़ी करते हैं। कहते हैं कि 'क्षमताके लिए जमीनके बड़े-बड़े टुकड़े ही चाहिए।' इस तरह भिन्न-भिन्न विचारवाले अपना-अपना विचार प्रकट करते हैं। परन्तु हम ऐसी कुशलतासे समता लायेंगे

कि उसके साथ क्षमता भी होगी। वास्तवमें जहाँ समता है, वहाँ क्षमता भी आयेगी।

'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥'

मजदूरोंके सवाल एकांगी ढंगसे, हिंसक तरीकेसे हल नहीं होंगे। अगर उससे कुछ कामयाबी नजर आती हो, तो भी बहुतसी हानियाँ होंगी। परन्तु मेरा काम कुशलतासे होगा। समता तो स्थापित करनी है, परन्तु ऐसे ढंगसे कि उससे मजदूरोंका दुःख नष्ट हो, उसी ढंगसे क्षमता भी स्थापित हो और दूसरे भी गुण निर्माण हों।

१-५-'५२ —फैजाबाद

: ७ :

आज सारा भारत मजदूर बन गया है। लाखों लोग अपनी बुद्धिका उपयोग नहीं कर सकते। वे शिक्षासे वंचित हैं—धन, मान और ज्ञानसे विहीन हैं। फिर उनमें क्षमता कैसे आयेगी? अगर चर्खेका कोई नया मॉडेल बनाना हो, तो आज गाँवमें उसके लिए अच्छा बढ़ई नहीं मिलता। उसके लिए उसको पाँच-पाँच साल तालीम देनी पड़ती है। हमारा कारीगर मजदूर-वर्ग अनिपुण (Unskilled) है—जिसमें कोई ज्ञान नहीं, प्रतिष्ठा नहीं, ध्येय नहीं—ऐसा वह वर्ग है। पूंजीवादी समाजमें कुछ तो ऐसे होते हैं जो दिमागका ही काम करते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो यंत्रके समान काम करते रहते हैं। उन्हें अक्लका काम नहीं दिया जाता। कुछ ऐसे होते हैं जो चाकूके कारखानेमें चाकूमें छेद करनेमें ही सारी जिन्दगी बिता देते हैं। हर रोज पाँच हजार चाकुओंमें छेद करते हैं। पूंजीवादी कहते हैं कि इस तरीकेसे क्षमता, कुशलता पैदा होती है। लेकिन इसमें मनुष्यके जीवनको सर्वांगीण नहीं बनाया जाता। इसमें मनुष्य केवल हाथ (Hand) ही बनता है। पूंजीवादी समाजमें कुछ हाथ (Hands) होते हैं और कुछ सिर (Heads) होते हैं। सारे धड़ इधर और सारे सिर उधर; जो सिरजोर बन

जाते हैं। और कहते हैं कि उससे क्षमता आती है। वे कहते हैं कि सर्वांग-पूर्ण मनुष्यकी बात छोड़ देनी चाहिए।

चातुर्वर्ण्यमें भी कुछ लोगोंने ऐसी ही कल्पना की थी। परन्तु उसमें ऐसी बात नहीं है। हरएक वर्णमें चारों वर्ण होते हैं—एक वर्णकी प्रधानता होती है और बाकीके वर्ण गौण होते हैं। युद्धके समय भगवान् कृष्ण केवल लड़ते ही नहीं थे, घोड़ोंको धोनेका काम भी करते थे। मोह-निरास के लिए ब्राह्मणका काम भी करते थे। उन्हें मौके-मौकेपर ग्वाल, ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय आदि सब बनना पड़ा। इस रचनामें तो ऐसा है कि जिसके लिए जो प्रधान काम है, उसे वह करना चाहिए; लेकिन बाकीके काम भी करने चाहिए। गणितका प्रोफेसर यदि यह कहे कि फैजाबाद स्टेशन कहाँ है, यह मैं नहीं जानता, क्योंकि यह तो भूगोल का विषय है, तो वह अच्छा नागरिक नहीं कहा जायेगा।

'धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः'

सबके लिए समान गुण, फिर भी सबके लिए अलग-अलग गुण। सबको परिपूर्ण मानव बनाया जाय, फिर भी हरएककी विशेषता कायम रखी जाय। सबको दिमाग, मन और हाथ हैं; इन सबके लिए काम दिया जाय, फिर प्रधानता चाहे किसी एकको दी जाय।

हम ऐसी समाज-रचना चाहते हैं कि इसमें जो मालिक होगा वह मजदूर भी होगा और जो मजदूर होगा वह मालिक भी। दोनों मालिक भी होंगे और मजदूर भी। कुछ मालिक-प्रधान मजदूर होंगे और कुछ मजदूर-प्रधान मालिक होंगे। कुछ बुद्धि-प्रधान शरीर-श्रम करनेवाले होंगे और कुछ श्रम-प्रधान बुद्धिका काम करनेवाले। अगर भगवान् यह नहीं चाहता तो वह कुछ लोगोंको हाथ ही हाथ देता और कुछको सिर्फ बुद्धि ही देता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। उसने सबको पूर्ण बनाया है।

हम 'मालिक-मजदूर' भेद ही मिटाना चाहते हैं। इसका मतलब यह है कि हम दोनोंकी अक्ल और श्रम-शक्ति, दोनोंका उपयोग करना चाहते हैं। समता लाना चाहते हैं और क्षमता को भी खोना नहीं चाहते।

१-५-'५२ —फैजाबाद

: ८ :

आज भगवान् बुद्धका जन्मदिन है। उनकी ख्याति सारे विश्वमें फैली हुई है। दुनियामें बहुतसे लोगोंका उनके जीवन, तत्त्वज्ञान और पद्धतिकी तरफ आकर्षण है। बीचके जमानेमें बुद्धका नाम नहीं लिया गया, परन्तु उनकी जयन्ती मनायी जाती थी। जिस शख्सकी जयन्ती ढाई हजार वर्ष बाद भी मनायी जा रही है, जिसका जन्म ढाई हजार साल बाद हो रहा है, उसकी जिन्दगी कितनी बड़ी होगी! आज भी हिन्दू लोगोंके जो धार्मिक सत्कार्य होते हैं, उनमें कहा जाता है:—

'वैवस्वते मन्वंतरे, बुद्धावतारे'

'यह कलियुग है, बुद्धावतारका समय है।' याने आज हम बुद्धावतारमें यह कार्य कर रहे हैं। यह बुद्धावतारका आरंभ है।

ढाई हजार साल पहले भगवान् बुद्धकी शिक्षाका बीज बोया गया था, वह मिट्टीसे ढाँका गया था। अब उसमें अंकुर फूट रहा है। बुद्ध भगवान्ने सबसे श्रेष्ठ बात स्पष्ट शब्दों में यह कही थी:

'न हि वेरेण वेराणि समन्तीध कुदाचन।
अवेरेण च समन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥'

'भाइयो, यह अनुभवका सार है कि वैरसे वैरका कभी शमन नहीं होता, निर्वैरतासे ही वह मिट सकता है। आगको बुझानेके लिए अग्नि, तेल या घी काम नहीं देता, उसके लिए तो पानी ही चाहिए। वैरको मिटाना है, तो वैर या दुश्मनीसे वह नहीं मिटेगा, अवैरसे ही मिटेगा।' यह बात उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दोंमें कही थी। उसमें क्या ताकत थी, इसका भान लोगोंको आज हो रहा है। आज दुनियामें चारों ओर असंतोषका धुआँ फैला हुआ है, कशमकश और लड़ाई-झगड़े चल रहे हैं। तब इन सवालोंको कैसे हल किया जाय, इसपर विचार करते समय ऐसा लगता है कि शायद बुद्ध भगवान्की शिक्षासे काम होगा, ऐटमबम और उद्जन बमसे मसले हल करनेकी कोशिश करोगे तो जो आज चल रहा

है, उससे शांति नहीं स्थापित हो सकती, मसले हल नहीं हो सकते, उससे तो शक्तिका क्षय ही होगा। उससे हम आगे नहीं बढ़ेंगे, जहाँके तहाँ ही रह जायेंगे। इसका कुछ-कुछ भान आज दुनियाको हो रहा है। बापूने तो यही कहा था। नास्तिक लोग भी भगवान् बुद्धको मानते हैं, उनको सिखावनको मानते हैं। आज उनकी अहमियत मनुष्यको महसूस हो रही है। आज उनका जन्म हो रहा है। ढाई हजार सालतक वे गर्भावस्थामें थे। उनके विचारोंका बीज बोया गया था, जमीनके अंदर। वहाँ उसे पोषण मिल रहा था। आज उनके विचारोंका अंकुर फूट रहा है।

९-५-'५२ —लखनऊ

: ९ :

बुद्ध भगवान्ने दुनियाको निर्वैरताकी शिक्षा दी। उन्होंने कहा कि वैरसे वैरका कभी शमन नहीं होता। उन्होंने यह जो तालीम दी, जो तत्त्व सिखाया, वह उनके जमानेमें भी नया नहीं था। आज तो वह नया है ही नहीं, परंतु जब उन्होंने इसका उच्चारण किया, तब भी वह नया नहीं था। उनके पहले भारतमें सैकड़ों वर्षोंका अनुभव था, तत्त्वज्ञान, आत्मा-अनात्माका विवेक था। वेद, उपनिषद्, सांख्य, गीता—यह सब उनके पहले हो चुका था। वेदोंने हमें निर्वैरताकी ही शिक्षा दी थी।

'मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥'

'अगर मैं चाहता हूं कि सारी दुनिया मेरी तरफ मित्रकी निगाहसे देखे, तो मैं भी सारी दुनियाकी तरफ मित्रकी निगाहसे देखूँगा।' दुनियाको शत्रु या मित्र बनाना मेरे हाथकी बात है।' मैं चाहूँ तो दुनियाको अपना मित्र बना सकता हूँ और चाहूँ तो शत्रु बना सकता हूँ। यह सारा अभिक्रम (Initiative) मेरे हाथमें है, दूसरोंके हाथोंमें नहीं। मैं जैसा चाहूँगा वैसी दुनिया नाचेगी। वह बंदर है, मैं उसे नचानेवाला हूँ। हम दुनियाको वही रूप देंगे जो हम चाहेंगे। मैं मित्रकी निगाहसे देखूं तो आईनेमें यह

ताकत नहीं है कि वह दूसरी निगाहसे मेरी तरफ देखे। मेरी आँखें निर्मल हैं तो आईना मलिन नहीं हो सकता। वह मेरी इच्छाके विरुद्ध दर्शन नहीं दे सकता। जैसे आईना मेरा प्रतिबिंबरूप है, वही हालत जड़ दुनियाकी है। किसी भी तरफ देखो, सृष्टि अपार, अनंत और असीम है। परन्तु चेतनके सामने विशाल दुनिया कुछ नहीं है, जैसे अग्निके सामने लकड़ीका असीम ढेर कुछ नहीं होता, क्योंकि वह जड़ है। मैं दुनियाको जैसी शक्ल दूँगा, वैसी ही वह बनेगी। सारी दुनिया मेरे हुक्मसे चल रही है। यह हिमालय मेरी ही आज्ञासे उत्तरकी तरफ है। अगर मैं चाहूँ तो उसे दक्षिणकी तरफ फेंक सकता हूँ। जब मैंने यह कहा तो एक लड़केने मुझसे पूछा कि यह कैसे संभव हो सकता है ? मैंने जवाब दिया कि मैं अगर हिमालयके उत्तरकी तरफ जाऊँ तो वह दक्षिणमें फेंका जायगा। तब उसकी हिम्मत नहीं होगी कि वह दक्षिणमें न जाय। इसी तरह मैं उसे सब दिशाओंमें फेंक सकता हूँ। वह बड़ा है, परन्तु जड़ है और मैं चेतन हूँ। वह कपासके बहुत बड़े ढेरके समान है, लेकिन मैं अग्निकी चिनगारी हूँ। मैं उसे खाक कर दूँगा, वह मुझे जला नहीं सकता। इसीलिए कहता हूँ कि मैं चाहूँ तो दुनियाको मित्र या शत्रु बना सकता हूँ। यह मेरे हाथकी बात है, यह वेदोंने समझाया है। वेदोंसे लेकर बुद्धतक हजार सालतक उसे दुहराया गया है। उसकी कसौटी की गयी है। बुद्धका अनुभव पक्का है। बुद्धने कोई नयी बात नहीं कही। परन्तु उन्होंने वह बात जितने निश्चयसे सामने रखी, उतने निश्चयसे शायद ही किसीने पहले रखी होगी। 'वैरसे वैर मिटता नहीं, क्रोधको अक्रोधसे जीतो' यह बात बुद्धके अनुभवसे स्थिर हो गयी।

'यह बात एक विचारके तौरपर मानी गयी, परन्तु सारे समाजमें उसका प्रयोग कैसे किया जाय—हमारी सारी समस्याएँ जो राजनैतिक, सामाजिक, कौटुंबिक हैं, उस तरीकेसे कैसे हल की जायँ, यह अब सोचना है। निर्वैरताको अमलमें कैसे लाया जाय, यह हमें देखना है। बीचके जमानेमें पानीसे अग्निको नष्ट करनेके, शांतिसे क्रोधको, निर्वैरतासे वैरको मिटानेके प्रयोग हुए हैं। फिर भी वे सारे व्यक्तिगत अनुभव थे। उसका समाजमें कैसे अमल

किया जाय—यह मालूम नहीं था। विज्ञानके प्रयोग पहले छोटे पैमानेपर प्रयोगशाला (Laboratory) में होते हैं, और वहाँ जब एक सिद्धान्त सिद्ध होता है, तो फिर व्यापक पैमानेपर उसे कैसे अमलमें लाया जाय, यह देखा जाता है। इसी तरह जो निर्वैरताका, अहिंसाका प्रयोग बुद्ध वगैरहके जीवनकी छोटी-छोटी प्रयोगशालामें सिद्ध हो चुका था, वही अब राजकीय क्षेत्रमें हुआ। गांधीजीने अहिंसक तरीकेसे स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयोग किया और उसमें हम सफल हुए। अब, स्वराज्यके बाद, हमें जो नयी समाज-रचना करनी है, वह किस तरीकेसे की जाय, इसपर सोचना चाहिए।

९-५-'५२ —लखनऊ

: १० :

मानवकी शक्ति मर्यादित है, क्योंकि उसका शरीर मर्यादित शक्तिवाला है। इसलिए उससे सेवा भी मर्यादित ही होगी; परन्तु वृत्ति मर्यादित नहीं रखनी चाहिए। कोई मेरे कार्यक्षेत्रके बाहर हों तो हर्ज नहीं; परन्तु सहानुभूतिके विचारके क्षेत्रसे बाहर हो जाते हैं तो मैं अपनी शक्ति खोता हूं, मेरी शक्ति मर्यादित हो जाती है। इसलिए चाहे सेवाका क्षेत्र मर्यादित हो, पर भावना और सहानुभूतिका क्षेत्र अमर्याद रहे। मनुष्यको मनुष्यके नाते ही देखो; नहीं तो हिंदू-धर्मकी आत्माको हम खो देंगे। हिंदू-धर्म कहता है कि सबमें एक ही आत्मा है। यह एक ऐसा विशाल धर्म है जिसमें किसी भी तरहका संकुचित भाव नहीं रह सकता। यदि हम यह बात ध्यानमें नहीं रखते हैं, तो धर्मकी बुनियाद ही खोते हैं।

'एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति।'

'सत्य एक ही है। उसे बुद्धिमान लोग कई नामोंसे पुकारते हैं।' इसमें 'विप्राः बहुधा वदन्ति' कहा गया है, 'मूर्खाः बहुधा वदन्ति' नहीं कहा गया। हिंदू-धर्म कहता है कि सत्य एक है, परन्तु उपासनाके लिए वह अलग-अलग हो सकता है। ऐसी व्यापक वृत्ति रखोगे तो हिन्दुओंकी सेवा कर सकोगे।

९-५-'५२ —लखनऊ

: ११ :

हमने आजादी अहिंसक तरीकेसे हासिल की। अब एक बड़ा भारी सवाल हमारे सामने यह है कि आर्थिक तथा सामाजिक रचना करनेमें कौनसे तरीके इस्तेमाल किये जायें। गांधीजीके जमानेमें अहिंसात्मक तरीका इस्तेमाल किया गया। इसमें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि उस समय हम लाचार थे, हिंसा नहीं कर सकते थे। इसलिए उस समयकी हमारी अहिंसा अशरणकी शरण थी, अगतिकताकी गति थी और अनाथका आश्रय था। उस समय हमारे सामने एक ही रास्ता था। लेकिन अब दूसरी बात है। हम चाहें तो सेना बढ़ा सकते हैं, चाहें तो हिंसाकी राह ले सकते हैं और चाहें तो अहिंसाकी राह ले सकते हैं। उस समय चुनावकी सत्ता हमारे हाथमें नहीं थी; लेकिन आज है। भगवान्ने बापूको देहसे मुक्त कर दिया और हमारे सामने सवाल रख दिया है। हम खुले तौरपर, बिना किसीके दबावके चुनाव कर सकें, इसीलिए भगवान् बापूको ले गया। अब उनका दबाव हमारे सिरपर नहीं है। वे रहते तो शायद हम बिना सोचे उनके पीछे-पीछे अहिंसाकी राहपर जाते। लेकिन भगवान् चाहता है, हम खुद सोचकर अपना रास्ता तय करें।

आप चाहें तो रूस या अमेरिकाको अपना गुरु बनायें और अपनी खुदकी स्वतंत्र इच्छासे उनके गुलाम बनें। हम किसीको गुरु बनाते हैं तो अपनी स्वतंत्र इच्छासे ही बनाते हैं। तो क्या हम उनके शागिर्द (Camp-Follower) बनना चाहते हैं? क्या हमारा यही नसीब है? वे तो हमसे काफी आगे बढ़े हुए हैं। हम उनकी ताकत लेकर चलें तो उनके जैसा बननेमें हमें अभी ५० साल लगेंगे और भी फिर शायद हम उनके पीछे ही रहेंगे। या तो भारत उनमेंसे किसी एकका गुलाम बनेगा या उनसे ताकतवर बनेगा। अगर ताकतवर हुआ तो दुनियाके लिए वह खतरनाक बनेगा। तो क्या उनको गुरु बनाकर गुलाम या दुनियाके लिए खतरनाक बनना चाहते हो?

भगवान्ने भारतको नसीब ही ऐसा दिया है कि या तो अहिंसामें

श्रद्धा रखें या हिंसाके पंडितोंके अनुयायी बनें। हमारा देश खण्डप्राय है। यहाँपर अनेक भाषाएँ, जातियाँ, धर्म और पंथ हैं। ऐसी हालतमें क्या इस देशको हिंसाके आधारपर एक बनाया जा सकता है? आज आंध्रवाले स्वतंत्र आंध्रप्रान्त चाहते हैं, तो क्या उनका अपने मकसदके लिए हिंसात्मक तरीके इस्तेमाल करना मंजूर करोगे? अगर आप हिंसाको मानते हैं, तो बापूका खून करनेवाला पुण्यवान था, ऐसा कहना होगा। चाहे उसका विचार गलत था, परंतु वह प्रामाणिक था, ऐसा कहना होगा। अगर अच्छे और सच्चे विचारके लिए हिंसात्मक तरीकोंको मानते हैं, तो गांधीजीकी हत्या करनेवालेने त्याग किया, उसने प्रामाणिकतासे अपने विचारका आग्रह रखा, ऐसा कहना पड़ेगा। इसलिए हिंसाको छोड़ना ही होगा। उससे भारतके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

जमीनकी समस्या तो सारी दुनियामें है। पर हम किस तरीकेसे उसे हल करते हैं—यही सवाल है। दुनियामें हिंसाके तरीके आजमाये गये हैं। अगर हम अपना त ीका नहीं चलाते हैं, तो बाहरका तरीका यहाँपर आनेवाला है। सारी दुनियामें विचारका प्रवाह इधरसे उधर और उधरसे इधर बहता रहता है। मानसूनकी तरह क्रान्तिकारक विचार भी बाहरसे यहाँ आयेंगे और यहाँसे बाहर जायेंगे। हवाकी तरह विचारको भी किसी 'पासपोर्ट' की जरूरत नहीं होती। विचारको कोई भी दीवाल नहीं रोक सकती। इसलिए तय करो कि भूमिकी समस्या शान्तिसे हल करनी है या नहीं? जैसे बाहरके विचारोंका यहाँपर आक्रमण हो सकता है, वैसे ही हमारे विचार भी बाहर जा सकते हैं। इसलिए हिम्मत रखो कि हम यहाँका विचार बाहर भेजेंगे। जैसे भगवान् बुद्धके अनुयायियोंने बाहर जाकर प्रेमसे विचारका प्रचार किया, उसी निष्ठासे काम करो और यह विश्वास रखो कि हम भूदान-यज्ञका विचार सर्वत्र फैलायेंगे। उसी निष्ठासे यह नये धर्म-चक्र-प्रवर्तनका काम करो तो हम दुनियाको आकार दे सकते हैं।

जैसे प्रलयमें सर्वत्र पानी ही पानी हो जाता है, तो भी मार्कंडेय ऋषि अकेला तैरता रहता है और दुनियाको बचाता है; वैसे ही आज जहाँ अणुबम, उद्जनबम, चिन्तनके प्रवाह चल रहे हैं; विचार, वचन, शस्त्र, व्यापार

आदिसे दुनियाको जीतनकी जितनी कोशिश चल रही हैं; वहाँ इन सारे प्रलयके पानीमें जो देश मार्कंडेय ऋषिके समान तैरेगा, वह दुनियाका नेता बनेगा। उसके हाथमें दुनियाका नेतृत्व आना लाजमी है। मैं यह अभिमानसे नहीं, नम्रतासे कह रहा हूँ। जो नम्र बनता है, वह ऊपर चढ़ता है। मनु महाराजने भविष्य लिखा था :

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'

'इस देशमें जो महान् विचारक पैदा हुए या होंगे, उनके द्वारा दुनियाके लोग अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा लेंगे।' भाइयो, ऐसा नेता हमें मिला था जब हमारा देश अहिंसाके जरिये स्वराज्य हासिल कर रहा था। आज भी हमारे देशमें ऐसे लोग हैं, जिनके हृदयमें सद्भाव है। थोड़ी हिम्मत और कल्पना-शक्ति रखो, तो आपके हाथोंमें दुनियाको आकार देनेकी शक्ति आ जायगी। यह कोई आक्रमण नहीं है, यह तो दुनियाको बचाना है। यह एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा है जो रखने लायक है। इसलिए यदि हम भूमिका मसला अहिंसक तरीकेसे हल कर सकेंगे तो दुनियाको रास्ता दिखा सकेंगे।

९-५-'५२ —लखनऊ

: १२ :

तत्त्वज्ञानियोंने भारतको आत्माका दर्शन करानेके लिए अनेक प्रकारके विचार दिये। अंतमें एक सिद्धान्त स्थिर हुआ कि मनुष्य-जीवनका चरम आदर्श है, मुक्ति। मुक्ति याने हम अपनेको भूल जायँ, हमारा अहंकार शून्य हो जाय, हम मिट जायँ। जब बिंदु सिंधुमें विलीन हो जाता है तब वह छोटा नहीं, बड़ा बन जाता है। इसी तरह हम भी विश्वरूप, समाजरूप बनें। मुक्तिका अर्थ यह है कि मानव अपने निजके जीवनको शून्य बनाये और विश्वके—समाजके जीवनमें विलीन हो जाय। काम-क्रोध छोड़े। जिस तरह नदी समुद्रमें लीन हो जाती है, उसी तरह मानव अपनी सारी शक्ति परमेश्वरमें लीन करे। हजार मस्तकों, हजार हाथों, हजार नेत्रोंसे हम विश्वरूप भगवान्की सेवामें लग जायँ जो हमारे सामने खड़ा है।

जब भगवान् नरसिंह ने हिरण्यकशिपुका विदारण किया तब प्रह्लादने उसकी स्तुति की : 'आपके इस भयंकर रूपसे मुझे डर नहीं लगता, क्योंकि यह रूप बुराइयोंको मिटानेवाला है'—'नाहं बिभेमि।'

फिर उसने भगवान्‌की प्रार्थना की :

'नैतां विहाय कृपणान् विमुमुक्ष अेकः।'

'मैं अकेला मुक्त नहीं होना चाहता'—यह कहकर उसने मुक्तिकी गलत राहपर प्रहार किया। जंगलमें जाकर, तपस्या करके, विकारोंको छोड़नेसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। परन्तु प्रह्लादने कहा कि जंगल कहाँ जाते हो? एक छोड़ते हो और एक पकड़ते हो तो मुक्ति कैसे पाओगे? परमेश्वर तो सर्वत्र है। सारे समाजके लिए अपना अहंकार छोड़ना ही मुक्ति है, संन्यास है, भक्ति है, त्याग है। तभीसे सन्तोंने बार-बार यही दुहराया कि हम व्यक्तिगत मुक्ति, स्वर्ग या राज्य नहीं चाहते। जबतक तू आनन्द भोगनेकी इच्छा करता है और मुक्तिको आनन्द मानता है तबतक वासना मिटी नहीं, अहंकार मिटा नहीं। मुक्तिका मतलब है—हम मिट जायँ। हजारों वर्षोंकी तपस्या और आध्यात्मिक प्रयोगोंके बाद यह बात संतोंने हमें सिखायी है।

१३-५-'५२ —कानपुर

: १३ :

आज हिंदुस्तानकी शक्ति जाग्रत हो रही है। अंधोंने भी दान दिया है। यह प्रेरणा कहाँसे आयी? एक छोटे-से गाँवमें मैंने भूदानका विचार समझाया। रातको मैं सो गया तो चार मीलकी दूरीसे रामचरण अंधा आया और दान देकर चला गया। उसने मुझे रामके चरणोंका दर्शन कराया। वह रातको ११ बजे आया और दान देकर चला गया। उस अंधेको क्या दर्शन हुआ? वह आपको बता रहा है कि हिंदुस्तान जाग रहा है। नया विचार, नयी भावना आ रही है। मैं गरीबोंका प्रतिनिधि बनकर आया हूँ। उनका हक माँग रहा हूँ। मैं सबको समझाता हूँ कि हवा, पानी और

सूरजकी रोशनीकी तरह जमीन भी भगवान्‌की देन है; इसलिए उसपर सबका समान अधिकार है। आजतक मुझे ऐसा कोई भी शख्स नहीं मिला जिसने यह कहा हो कि 'भूदान नहीं देना चाहिए।' किसीने मोहवश नहीं दिया हो सो बात अलग है, परन्तु सबने यह बात मानी है कि भू-दान देना चाहिए। इसलिए मेरा विश्वास है कि भारतमें एक नयी क्रान्ति हो रही है। देखते-देखते सारे लोग उठ जायँगे।

उपनिषदोंमें एक कहानी है। बीज छोटा होता है। गुरु शिष्यसे कहता है कि उस बीजके टुकड़े करो। फिर पूछता है कि 'अब क्या देखते हो?' शिष्य कहता है कि 'कुछ नहीं।' तो गुरु कहता है कि जो अत्यंत सूक्ष्म है, जो तुम नहीं देख सकते हो, वह परमेश्वरका स्वरूप है—'स य एषोऽणिमा।' वह तेरा स्वरूप है—'तत्त्वमसि।' यह जो नहीं दीखता उसीसे विशाल सृष्टि पैदा होती है। वट-वृक्षके अति सूक्ष्म बीजसे विशाल वटवृक्ष पैदा होता है।

इसी तरह आज हर हृदयमें बीज बोया जा रहा है। उसे पानी मिल रहा है। फिर आगे चलकर उसका महान् वृक्ष होगा। मैं दुबला-पतला आदमी भी विचारकी शक्तिसे ताकत पाता हूँ। मुझमें कोई ताकत नहीं है, कल भी खत्म हो सकता हूँ। हर रोज १०-१५ मील चलता हूँ, फिर भी थकता नहीं। यह स्फूर्ति कैसे आती है? वह इसलिए आती है कि परमेश्वर इस कामको चाहता है। जब वह चाहता है तो बंदरों और ग्वाल-बालोंसे भी महान् काम करवा लेता है। इसी तरह हम-जैसे कमजोरों-से वह यह महान् कार्य करवा रहा है। परमेश्वर चाहता है तो यह काम होकर ही रहेगा।

१३-५-'५२ —कानपुर

: १४ :

मैं आपको समझाने आया हूँ कि आप तुच्छ नहीं हैं, महान् हैं। मैं किसीकी भी इज्जत कम नहीं करना चाहता। सबकी इज्जत बढ़ाना चाहता हूँ। भारतवर्ष दस हजार वर्ष पुराना देश है, जहाँपर तपस्या हो चुकी है, सामाजिक परिवर्तन हो चुके हैं, असंख्य महापुरुष पैदा हुए हैं। इसलिए भूलो मत कि तुम महान्

हो, तुम्हारी तरफ सारी दुनियाकी आँखें लगी हुई हैं। बच्चेको बचपनसे यह समझाते रहो कि 'तू देह नहीं, तू ब्रह्म है—'तत्त्वमसि।' तू चोला नहीं; तू देहसे भिन्न है। तेरी देहको कोई धमकाये तो डरना नहीं। जुल्मी लोग शरीरको डराकर अपनी सत्ता कायम करते हैं। परन्तु कोई तेरे शरीरको मार-पीटकर तुझसे अच्छी भी चीज करानेकी कोशिश करे, तो न करना। हम इस शरीरसे भिन्न हैं, यह पहचानना।' बच्चोंको इस तरहसे समझाते रहना चाहिए, न कि उन्हें डराना-धमकाना। उनसे यह कहना चाहिए कि तुम तुच्छ नहीं हो। बच्चे पूर्ण होते हैं, अपूर्ण नहीं। उनको प्रतिष्ठा देनी चाहिए, निर्भय बनाना चाहिए, तब देश आगे बढ़ेगा। यह तभी हो सकता है जब 'हम सब परिपूर्ण हैं', यह सबको समझायेंगे। एक छोटी-सी मिसाल देता हूँ। बापको पूरा लड्डू दिया जाय और बच्चेको आधा, तो बच्चा नहीं मानेगा। वह पूरा लड्डू चाहेगा, आधा नहीं। वह समझ सकता है कि बाप बड़ा है इसलिए उसे बड़ा लड्डू मिल रहा है और मैं छोटा हूँ इसलिए मुझे छोटा लड्डू मिल रहा है, परन्तु उसे चाहिए पूर्ण ही। वह कहता है कि मैं पूरा हूँ, अधूरा नहीं हूँ। वह अपूर्णताको सहन नहीं कर सकता; वह भी पूर्ण है—'पूर्णमदः पूर्णमिदम्।'

इसी तरह छोटे-बड़े सब काश्तकार एक-दूसरेको अपना ही अंग समझें। सब आत्मरूप हैं—यह बात समझानेसे आप जो भी माँगेंगे उसे वह देना पड़ेगा। जब देनेवालेको लगता है कि मैं अलग हूँ और यह अलग, तब उसे देनेमें संकोच होता है। पर दोनों एकरूप हैं—यह मानो तो जो माँगो वह दिये बगैर नहीं रहेगा। हम सब पूर्ण हैं—यह मानोगे तो हिंदुस्तान प्राचीनकालसे भी अधिक गौरवशाली बनेगा।

१३-५-'५२ —कानपुर

: १५ :

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'

'ज्ञानके समान पवित्र वस्तु कोई नहीं है।' उसके सामन कोई अमंगल विचार टिक नहीं सकता। 'मैं जमीनका मालिक हूँ'—यह अमंगल विचार है।

'मैं जमीनका सेवक हूँ'—यह मंगल विचार, सद्विचार है। दुनियाको यह स्वीकार करना ही होगा, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। इसलिए हम अपने कार्यकर्ताओंसे कहते हैं कि सतत काम करो। हम तो अपना विचार समझाते जायँगे, क्योंकि ज्ञानसे बढ़कर और कोई शक्ति है ही नहीं। अगर मनुष्यके हृदयमें ज्ञान पहुँच जाय तो उसका सारा हृदय पवित्र हो जाता है। इसलिए हमें ज्ञान देनेमें ही दिलचस्पी है। फिर इसमें चाहे जितना समय लग जाय। किसीको बार-बार समझाना पड़े, तो भी हमें दुःख नहीं होता, बल्कि उत्साह अधिक बढ़ता है, क्योंकि हम शिक्षक हैं। हम मानते हैं कि मंदबुद्धि विद्यार्थीको समझानेमें हमारी बुद्धिकी कसौटी होती है।

२०-५-'५२ —आटा (हमीरपुर)

: १६ :

हर देशकी अपनी सभ्यता होती है। उसके आधारपर हर देशकी क्रान्तिका अपना एक ढंग होता है। वेदोंसे लेकर गांधीतक, सारे विचारोंका मैंने अध्ययन किया है, सारे विचारोंको मैं घोलकर पी गया हूँ। और इसी-लिए मैं कहता हूँ कि भारतका अपना एक मिशन है, अपना एक धर्म है। यहाँ कई त्यागी हुए हैं। यहाँपर त्यागका नाम सुनते ही लोगोंके दिलोंमें उत्साह पैदा होता है।

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।'

'न कर्मसे मोक्ष मिलता है, न प्रजासे, न धनसे; बल्कि त्यागसे मिलता है।' यहाँपर जो क्रान्ति होगी वह त्यागसे होगी, त्यागकी पृष्ठभूमिपर होगी।

१४-९-'५२ —दुर्गावती (आरा)

: १७ :

जो भूमिहीन काश्त करनेके लिए भूमि माँगते हैं, उन्हें भूमि देना हमारा कर्तव्य है। यह एक बुनियादी उसूल है, मानवका हक है, ऐसा मैं मानता हूँ। वेदोंमें कहा है, 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'—जमीन हमारी

माता है और सब मानव उसके पुत्र हैं। इस तरह हरएक पुत्रका हक है कि माँके पास पहुँचे और हरएक पुत्रका यह कर्तव्य है कि वह माँकी सेवा करे।
१४-९-'५२ —दुर्गावती (आरा)

: १८ :

ऋषिने कहा है :

'यावान् वा अयमाकाशः, तावान् एषोऽन्तर्हृदय आकाशः।'

'जितना व्यापक आकाश बाहर है, उतना ही भीतर है।' दिलके आकाश-को बाहरके आकाशके समान उदार बनाओ।
१७-९-'५२ —सासाराम (आरा)

: १९ :

यह किसानोंका देश है। हमारा आदर्श 'कृष्ण' है। कृष्ण यानी किसान। पर आज हालत यह है कि बाहरसे अनाज मँगाना पड़ता है। यह क्यों हो रहा है? इसीलिए कि जो चीज जिसकी है, उसे हम उससे वंचित रखते हैं। उसके लिए कमसे कम अपनी भूमिका छठा हिस्सा देना हमारा कर्तव्य है। शास्त्रोंमें कहा गया है—'षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः' भूमिका रक्षण करने-वाले राजाको छठा हिस्सा देना लाजमी है। आज हिंदुस्तानका राजा कौन है? सबको मतदान (Vote) का हक मिला है। अब किसान राजा बन गया है, इसलिए उसे उसका हक देना चाहिए।
१७-९-'५२ —सासाराम (आरा)

: २० :

मनु महाराजने कहा है कि 'सदा शुचिः कारुहस्तः'। 'काम करने-वालेके हाथ सदैव पवित्र रहते हैं।' किसी मजदूरके हाथमें काम करते-करते मिट्टी लग जाती है और वह उन्हीं हाथोंसे रोटी खा लेता है तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि उसके हाथ पवित्र हैं। मेहनतसे हाथ मैले नहीं, पवित्र होते हैं। अपवित्र कामसे ही हाथ अपवित्र होते हैं। पवित्र और

उत्पादक श्रमसे हाथ पवित्र ही होते हैं। मनु महाराजके इस सन्देशको हमने ठीकसे नहीं समझा और मेहनत करनेवाले मजदूरको नीच माना। मजदूरको कम मजदूरी दी जाती है और प्रोफेसरको ज्यादा तनख्वाह। ऐसा क्यों? शारीरिक-परिश्रमको, उत्पादक कामको तो श्रेष्ठ मानना चाहिए। प्रोफेसरको बेशुमार छुट्टियाँ मिल जाती हैं और भंगी, बुनकर, चमारको बीमारीके वक्त भी तनख्वाह नहीं मिलती! यह गलत समाज-रचना है, हमें इसे एक क्षणके लिए भी बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। हम समानता प्रस्थापित करना चाहते हैं। लेकिन जबतक हम यह व्रत नहीं लेते कि कुछ-न-कुछ उत्पादक परिश्रम किये बगैर नहीं खायेंगे, तबतक समानता प्रस्थापित नहीं हो सकती।

१९-९-'५२　　—नासिरगंज (आरा)

: २१ :

खाना, पीना और बाल-बच्चे पैदा करना तो जानवरोंमें भी होता है। अगर हम इतना ही करते रहें तो जानवरोंमें और हममें क्या फर्क रह जायगा? लेकिन मानवका उतने-भरसे समाधान नहीं होता, केवल भोग-परायण होनेसे मनुष्यका समाधान नहीं होता। महाभारतमें ययाति की कहानी है। उसके पाँच बेटे थे। उसने जवानीमें बहुत सुख भोगा, पर बूढ़ा होनेपर भी उसकी वासना नहीं गयी। उसने परमेश्वरसे जवानीकी प्रार्थना की। परमेश्वरने कहा कि 'अगर तेरे लड़कोंमेंसे कोई तेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी तुझे देनेको राजी हो, तो मुझे मंजूर है। फिर वह लड़कोंके पास गया और उनसे कहने लगा कि 'मेरी भोग-वासना अभी तृप्त नहीं हुई है, क्या तुममेंसे कोई अपना यौवन देनेको तैयार है?' चार लड़कोंने तो इनकार कर दिया, परन्तु पाँचवेंने कहा, 'जी, मै राजी हूँ।' उसने ययातिको अपना यौवन देकर उसका बुढ़ापा ले लिया। फिर क्या हुआ? भोग भोगनेके बाद वह फिरसे बूढ़ा हो गया। तब उसने देखा कि भोगवासना तो वैसी ही है। अतः उसने महसूस किया कि भोग भोगनेसे कभी तृप्ति नहीं होती। उसने दो बार अनुभव करके देख लिया और उसे एक श्लोकमें कह डाला:

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥'

'भोग भोगनेसे काम-वासना शांत नहीं होती, बल्कि बढ़ती ही है। जैसे अग्निमें घी डालनेसे अग्नि शान्त नहीं होती, बल्कि प्रज्ज्वलित ही होती है।' इसलिए भोग भोगनेसे कभी भी समाधान नहीं हो सकता। मनुष्यको संतोष तो तब मिलता है, जब उसकी आत्माका समाधान होता है। और आत्माका समाधान तब होता है, जब मनुष्य दूसरोंके लिए त्याग करता है।

२६-६-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २२ :

हम देख रहे हैं कि आज दुनियामें कोई भी देश सुखी नहीं है, यद्यपि सुखके साधन बहुत बढ़ गये हैं। इसका मतलब यह है कि कहीं-न-कहीं गलती हो रही है। आज तो जितने सुखके साधन बढ़ते जा रहे हैं उतने ही दुःख भी बढ़ते जा रहे हैं। दुनियामें चारों ओर दुःख, अशांति और डर फैला हुआ नजर आ रहा है।

महाभारतकी एक कहानी है। सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा कि 'जंगलमें रहकर भी तुम सुखी कैसे रह सकती हो, हम तो द्वारिकामें भी सुखी नहीं हैं। सुखकी कुंजी क्या है, वह हमें बता दो।' द्रौपदीने कहा—'दुःखेन साध्वी लभते सुखानि' अर्थात् 'दुःखसे ही सुख हासिल हो सकता है।' याने जो दूसरोंके लिए तकलीफ उठानेको तैयार हैं, वे ही सुखी हो सकते हैं। सुखसे सुख नहीं प्राप्त हो सकता। सुख चाहते हो तो दूसरोंको सुखी बनानेकी कोशिश करो। अपने भूखे पड़ोसीकी पर्वाह किये वगैर हम कभी भी सुखी नहीं हो सकते। दूसरोंको लूटकर हम कभी भी सुखी नहीं हो सकते। हम दूसरोंकी चिंता करेंगे तो वे भी हमारी चिंता करेंगे। जैसा बीज बोयेंगे, वैसा ही फल पायेंगे।

२६-६-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २३ :

दुनियामें चारों ओर दुःख ही दुःख दिखाई पड़ रहा है। हम एक-दूसरे-की पर्वाह नहीं करते। संसारमें सुख और शान्ति तभी निर्माण होगी जब हम एक-दूसरेकी पर्वाह करेंगे और इस विचारको समझेंगे कि 'भगवान्-की देन सबके लिए है।' हवा, पानी, सूरजकी रोशनीकी तरह जमीन भी भगवान्की देन है, इसीलिए वह सबके लिए है—उसपर सबका समान अधिकार है। हमें इस तरह सोचना चाहिए कि 'पहले मैं दूसरोंको दूंगा और फिर स्वयं खाऊँगा।' गीतामें कहा है:

'यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥'

'जो यज्ञशेष खायेगा वह पुण्यवान है, नहीं तो वह चोर है।' यज्ञशेष खाना याने सबको खिलाकर बादमें बचा हुआ खुद खाना। घरमें माता सबको खिलाकर बादमें बचा हुआ खाती है। अगर वह कोई चीज बनाती है तो पहले सबको देती है। फिर उसके लिए कुछ नहीं बचता तो कुछ न खाकर भी संतोष मानती है। दुबारा अपने लिए नहीं बनाती। इसीमें उसको आनंद मिलता है। माँ अगर बच्चोंसे यह कहे कि 'मैंने खाना बनाया है, मैंने मेहनत की है, तो मैं ही पहले खाऊँगी', तो ऐसी माता-का उसके बच्चे क्या आदर करेंगे? क्या इससे माताके दिलको कभी समा-धान हो सकता है? जैसे माताको सबको देनेसे समाधान होता है, वैसे ही आपको भी होना चाहिए। माताका हृदय हासिल करो। सबको देकर बची हुई चीज स्वयं खाओ। पहले अपने गरीब भाइयोंको खिलाओ और फिर खाओ। वह दरिद्रनारायण, छठा भाई बनकर आपके घरमें पैदा हुआ है, उसे उसका हिस्सा दे दो। हम दरिद्रनारायणके प्रतिनिधि बनकर आपसे जमीनका छठा हिस्सा माँग रहे हैं। हम लड़के बनकर आपके घरमें प्रवेश कर रहे हैं। हमें बंजर-पड़ती जमीन नहीं चाहिए, हमें तो अच्छी जमीन मिलनी चाहिए, जो आप अपने लड़कोंको देंगे।

२६-९-'५२ ——ब्रह्मपुर (आरा)

: २४ :

भगवान्‌ने अर्जुनसे गीता सुनानेके बाद पूछा—"तूने एकाग्र बनकर सारा सुना, तो अब क्या तेरा मोह नष्ट हो गया ?" अर्जुनने कहा :

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥'

'मेरा मोह नष्ट हो गया है और अब मैं आपके विचारके अनुसार काम करनेको तैयार हूँ।' वैसे ही मैं भी आपको विचार समझा रहा हूँ। हवा, पानी और सूरजकी रोशनीकी तरह जमीन भी भगवान्‌की देन है और इसीलिए वह सबके लिए है, उसपर सबका समान अधिकार है। अगर आप इस विचारको समझेंगे तो आपका मोह नष्ट होगा और फिर आप अपना सब कुछ दानमें दे सकेंगे।

२६-९-'५२ —ब्रह्मपुर (आरा)

: २५ :

आपके इस प्रदेशमें एक महापुरुष हो गये हैं। उनका नाम भगवान् बुद्ध था। उन्होंने हमें विश्वविजयका एक मंत्र दिया था। वे इसी बिहारकी भूमिपर अपना प्रेम, करुणा और निर्वैरताका संदेश सुनाते रहे। हमने देखा कि उनके इस उपदेशका परिणाम हिंदुस्तानपर तो हुआ ही, दुनियाके दूसरे देशोंपर भी हुआ। आज जब कि दुनियामें अशांति और हिंसाका वातावरण फैला हुआ है, उनके विचारोंका स्मरण दुनियाको अधिक हो रहा है। दुनियाके सारे विचारक उसी नतीजेपर पहुँच रहे हैं, जिसपर भगवान् बुद्ध ढाई हजार साल पहले पहुँचे थे। भगवान्‌ने कहा था :

'अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन, सच्चेनालिकवादिनम् ॥'

'अक्रोधसे क्रोधपर विजय हासिल की जा सकती है। साधुत्वसे असाधुत्वपर विजय हासिल की जा सकती है। कंजूसपर दानसे विजय हासिल

की जा सकती है। झूठ बोलनेवालोंपर सत्यसे विजय हासिल की जा सकती है।'

सामनेके व्यक्तिमें अगर गुस्सा नजर आता है और उसे हम जीतना चाहते हैं, तो हममें परम शान्ति होनी चाहिए। उसमें जितनी मात्रामें क्रोध हो, उतनी ही मात्रामें हममें शान्ति होनी चाहिए। शान्तिसे ही हम क्रोधको जीत सकते हैं। भगवान्ने किसीको क्रोधके वश होनेकी बात नहीं कही थी, जैसा कि दुर्बल लोग समझते हैं। तलवार देखकर भाग जाना कायरतासे तलवारके वश होना है। उन्होंने हमें एक विजयमंत्र दिया था कि अक्रोधसे क्रोधको जीतना चाहिए। सामनेवालेका शस्त्र लेकर हम उसपर हमला करना चाहते हैं तो इससे दुनियामें शान्ति निर्माण नहीं हो सकती। परशुरामने यही प्रयोग किया था। उन्मत्त क्षत्रियोंको सबक सिखानेके वास्ते, खुद ब्राह्मण होते हुए भी, उसने हाथमें शस्त्र लिया, और पृथ्वीको निःक्षत्रिय बनानेका प्रयत्न किया। एक बार पृथ्वी निःक्षत्रिय बना दी, फिर भी क्षत्रिय बचे ही रहे तो दुबारा वही किया। इस तरह इक्कीस मर्तबा उन्होंने यही प्रयोग किया। फिर भी क्षत्रिय नामशेष नहीं हुए; क्योंकि वह खुद हाथमें शस्त्र लेकर क्षत्रिय जो बन गये थे। जब उन्होंने खुद क्षत्रियोंकी संख्यामें वृद्धि की, तो क्षत्रिय कैसे नष्ट हो सकते थे? जब उन्होंने क्षत्रियत्वका बीज बोया तो उसमेंसे अनंतगुने क्षत्रिय पैदा होना सिद्ध ही रहा।

पूर्वजोंके ये सारे अनुभव भगवान् बुद्धके सामने थे। इसीलिए उन्होंने मानव-समाजको संदेश दिया कि दुर्जनताके वश मत होना, न भागना। अगर दुर्जनतापर सत्ता चलानी है तो हमें अपनेमें दुर्जनताका प्रवेश नहीं होने देना चाहिए। अगर दुर्जनताने हमारे हृदयमें प्रवेश पाया तो वह हमारे हृदयको जीत लेगी। असाधुत्व साधुत्वसे ही पराजित हो सकता है। कंजूसपन उदारतासे ही दूर किया जा सकता है। सत्यसे ही मिथ्याका लोप करना चाहिए। अंधकारसे अंधकार मिट नहीं सकता, बल्कि वह अधिक गहरा होगा। उसके विरुद्ध तो प्रकाशकी ही शक्ति चाहिए। बच्चेके अज्ञानको मिटानेके लिए उस्तादमें ज्ञान होना चाहिए। अज्ञानके सामने अज्ञान खड़ा करके हम उसे नहीं मिटा सकते। इस तरह-

की कई मिसालें हम जीवनमें देखते हैं। फिर भी जहाँ समाजव्यापी कार्य करना होता है, राष्ट्रीय दृष्टिसे काम करना होता है वहाँ मनुष्य अभी इस निर्णयतक नहीं आया है कि **'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।'** अभी भी प्रयोग चल रहे हैं। य लोग अभी भी संहारक शस्त्र वढ़ाकर शांति प्रस्थापित करनेके प्रयोग कर रहे हैं।

२९-९-'५२ —आरा

: २६ :

मनुष्य स्वभावतः सज्जन है। इसीलिए वह साधुको नमस्कार करता है, चोर-डाकूको नहीं। क्योंकि उसका हृदय अंदरसे पावन है, निर्मल है। गीता कहती है:

'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥'

'कोई अत्यंत दुराचारी भी अगर मेरी भक्ति करे, तो फौरन अनन्य भक्त बन सकता है।' मानव परिस्थितिवश दुराचारी बनता है, दुराचारके प्रवाहमें वह जाता है। लेकिन जिस क्षण उसे वस्तुका स्वच्छ दर्शन हो जायगा, तब वह किसी भी निमित्तसे क्यों न हो, फौरन वदल जायगा। दुनियामें जो पाप होते हैं, वे अज्ञानके कारण ही होते हैं। सच्चे दुराचारियोंकी एक खूबी यह होती है कि उनमें भगवान्के प्रति अधिक श्रद्धा होती है। जो सच्चे दुराचारी होते हैं वे सच्चे सदाचारीके अत्यंत नजदीक होते हैं, जैसे वर्तुलके दो सिरे। इसलिए दुराचारियोंमें परिवर्तन लाना विल्कुल आसान है। दुर्जन अत्यंत सज्जन बन सकते हैं। मनुष्यकी मानवतामें और मानव-हृदयकी सज्जनतामें अगर हमारी श्रद्धा नहीं, तो यह मानवका जीवन जीने लायक नहीं रहेगा, फिर तो हमें गंगाजीमें जाकर डूब मरना होगा। ...... लेकिन सत्यका कभी नाश नहीं हो सकता। असत्यकी कोई हस्ती नहीं है। प्रकाशके सामने अन्धकार टिकता नहीं। अंधकार अभावरूप है और प्रकाश भावरूप। दुर्गुण

शरीरके होते हैं और सद्गुण आत्माके। शरीर बदलता है तो दुर्गुण भी बदलते हैं। आत्मा स्थिर है, इसीलिए उसके गुण भी स्थिर रहते हैं। जैसे हंस दूध और पानीको अलग-अलग कर लेता है, वैसे ही हमें सद्गुण और दुर्गुणोंको पृथक् करना चाहिए।

२६-६-'५२ —आरा

: २७ :

'नयी तालीम' यों तो ऊपर-ऊपरसे निर्दोष, गरीब दीखेगी, लेकिन वह एक महान् परिवर्तन करनेवाली है। अगर 'नयी तालीम' चलेगी तो आजके सामाजिक मूल्य टिक नहीं सकते। 'नयी तालीम' में आजके जैसा श्रीमान् और गरीबका फर्क नहीं किया जायगा। दोनोंको लाजिमी तौरपर, ज्ञानकी दृष्टिसे, कुछ-न-कुछ दस्तकारी सिखायी जायगी। फिर आपके आजके ऊँच-नीचके भेद नहीं रहेंगे। वहाँ तो श्रीमान्का लड़का भी गोबरमें हाथ डालेगा और ब्राह्मणका लड़का भी मेहतरका काम करेगा। पुरुष-जन्म प्राप्त हुआ लड़का रसोई बनायेगा, जो स्त्रियोंका काम माना जाता है। उससे तो सारे समाजमें उथल-पुथल होगी। आज तो समाजमें दर्जे बने हैं। जो समाजके लिए अत्यंत उपयोगी काम है, जिसके बिना समाज टिक नहीं सकता, उसे नीच माना जाता है। लेकिन ये दर्जे टूटनेवाले हैं और जैसा वेदोंने कहा है:

'समानो मंत्रः समितिः समानी।'

'सबकी समिति बैठकर सारा काम होगा। सब समान होंगे, दर्जे नहीं रहेंगे'—यह हालत होनेवाली है। इसीलिए अगर आप 'नयी तालीम' को कबूल करते हैं तो समझ-बूझकर कीजिये।

३-१०-'५२ —बिक्रम (पटना)

: २८ :

भूदानके पीछे जो विचार है, वह मैं न रूससे लाया हूँ न चीनसे। वह इसी आर्यभूमिका विचार है, एक धर्मविचार है। इसीलिए मैंने इस कामको 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' कहा है।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'हरएकका यह कर्तव्य है कि कुछ-न-कुछ काम करे, उत्पादन करे। परिश्रमरूपी 'यज्ञ' सब देवताओंको प्रसन्न करता है। जो इस तरह शरीरपरिश्रमरूपी उत्पादक-यज्ञ नहीं करेगा वह चोर, पापी होगा।' यह जो शाप भगवान्‌ने दिया है, वह आर्य-संस्कृतिकी ही बात है।

'एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥'

उपनिषदोंमें ऋषि कहता है :

'मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः। सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ॥

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं। केवलाघो भवति केवलादि ॥'

'मूर्ख नाहक अन्नका ढेर जमा करता है। वेद कहता है कि मैं सत्य बोल रहा हूँ कि वह अन्न नहीं इकट्ठा कर रहा है, अपना वध इकट्ठा कर रहा है। जो अन्नका संग्रह करता है, वह मृत्युका संग्रह कर रहा है। जो अकेला खाता है (अपने भाइयोंको देनेके बजाय) वह पुण्य नहीं, पाप खाता है।' इससे कठिन शाप कौन दे सकता है? क्या चीन और रूसके विचारोंमें ऐसा शाप दिया गया था? जो अपने वृद्धों और अपने समानवय-वालोंकी सेवा नहीं करता और अकेले खाता है वह पापी है, यह वेद, मनुस्मृति और गीताका उद्‌गार मैं गाँव-गाँव जाकर सुना रहा हूँ। 'परिश्रम न करनेवाला खानेका अधिकारी नहीं', यह भरतभूमिका ही विचार मैं लोगोंको सुना रहा हूँ।

मैं मानता हूँ कि कुछ लोग अधिक मानसिक परिश्रम करेंगे और कुछ अधिक शारीरिक परिश्रम, परन्तु सभीको श्रमनिष्ठ होना चाहिए। कुछ लोग सिर्फ मानसिक काम करेंगे और कुछ सिर्फ शारीरिक काम—इस तरह-

का विभाग हम हर्गिज नहीं चाहते। सबको दोनों काम करने होंगे। भगवान्ने हरएकको हाथ-पाँव दिये हैं और दिमाग भी । इसलिए हरएकको दोनों काम करना चाहिए। लेकिन आज तो पश्चिमसे जो विचार आया है, उसके अनुसार कुछ लोग केवल 'श्रमजीवी' (Hands) ही रह जाते हैं और कुछ केवल 'बुद्धिजीवी' (Heads) । इस तरहका विभाग करना अत्यंत खतरनाक है। हम चाहते हैं कि ऐसी समाज-रचना एक क्षणके लिए भी न टिके। 'धन हमें बचानेवाली चीज है', यह मानना गलत है। बचानेवाली चीज तो गुण है। इसलिए गुणोंको बढ़ाओ। परन्तु आज हम गुणोंको नहीं बढ़ाते और धनका संग्रह करते जाते हैं । लेकिन यह धन नहीं, आपका निधन है। जो धन बाँटेगा, वही सुखी होगा।

३-१०-'५३ —विक्रम (पटना)
२३-४-'५३ —ओढ़नपुर (गया)

: २९ :

इस दुनियामें जबसे इन्सानकी बस्ती हुई है, तबसे धर्मभावना निर्माण हुई है। मनुष्यों और जानवरोंमें यही फर्क है कि जानवरोंमें ऐसी कोई धर्मभावना नहीं होती।... हमारे सामने जो अनंत सृष्टि दिखाई पड़ रही है, वह परमात्मा ही है। परमात्मा अनंत रूप और अनंत नाम लेकर हमारे सामने लीला कर रहा है। इसलिए हमारा यह धर्म हो जाता है कि यह जो अनंतरूपी प्रभु हमें दर्शन दे रहा है, उसकी हम सेवा करें। अपने शरीरसे मेहनत करके, दूसरोंको सुख पहुँचाएँ। इसीको 'धर्म' कहते हैं। व्यास मुनिने बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं। एक दफा किसीने उनसे पूछा कि 'आपके इतने सारे ग्रंथ हम कब पढ़ेंगे? यह सारा समुद्र कौन पार करेगा? इसलिए इसका सार बताइये।' उन्होंने एक श्लोकमें सार बताया :

'अष्टादशपुराणानां सारं सारं समुद्धृतम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

अठारह पुराणोंका सार यही है कि दूसरेकी सेवा करना पुण्यमार्ग है और दूसरोंको अपनी देहके वास्ते तकलीफ देना पापमार्ग है।'

शेर अपनी देहके वास्ते जो भी प्राणी सामने आ जाय, उसे खा जाता है। वह यह नहीं सोचता कि इसमें उस प्राणीको कितनी तकलीफ होती है; क्योंकि वह अज्ञानी है। वह अपनेको देहसे भिन्न नहीं पहचान सकता। लेकिन हमारी हालत वैसी नहीं है। सोचनेसे हमें मालूम हो जाता है कि हम देहसे भिन्न हैं। इसीलिए हम समझ सकते हैं कि निष्काम-भावना, और निरहंकार बुद्धिसे सेवा करना ही पुण्यमार्ग है।

१६-१०-'५२ —बसन्तपुर (सारन)

: ३० :

पिछले जन्मके पाप-पुण्यके कारण इस जन्ममें गरीबी या अमीरी प्राप्त होती है, यह खयाल गलत है। पिछले जन्मके पुण्यसे अच्छी बुद्धि तथा निरहंकारिता प्राप्त होती है और पापसे बुरी भावना पैदा होती तथा बुरे कामकी इच्छा होती है। हमें अच्छी बुद्धि प्राप्त हो तो समझना चाहिए कि हमने पिछले जन्ममें पुण्य-कर्म किये थे और अगर हमें बुरे काम करनेकी इच्छा होती है, तो समझना चाहिए कि पिछले जन्ममें हमने पापकर्म किये थे। शंकराचार्यने कहा है:

'अथवा योगिनामेव कुले धीमतां दरिद्राणाम् इत्यर्थः।'

'जो बड़ा भाग्यवान् पुरुष होता है, जिसने पिछले जन्ममें पुण्यकर्म किये हैं, वेदाध्ययन किया है, वह योगियोंके कुलमें पैदा होता है, जो दरिद्री कुल होते हैं।' शंकराचार्य खुद गरीब घरमें पैदा हुए थे। पुण्यवान् व्यक्ति श्रीमान्के घरमें भी जन्म पा सकता है। चाहे श्रीमान्के घरमें पैदा हो या गरीबके घरमें, दोनों जगह बुद्धि अच्छी होनी चाहिए।

जो सोचते हैं कि आज जो गरीब हैं, वे अपने पूर्वजन्मके पापोंके कारण गरीब बने हैं; इसलिए उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए, उन्हें उनके नसीबपर छोड़ देना चाहिए, क्योंकि पिछले जन्मके पाप-पुण्यको हम

नहीं मिटा सकते, वे गलती करते हैं। इस तरह सोचनेवाले खुद पापी हैं। इसीलिए जो श्रीमान् हैं, उन्हें अपने गरीब भाइयोंके प्रति अपना फर्ज अदा करना चाहिए। भगवान्ने उन्हें संपत्ति इसीलिए दी है कि वे उसका उपयोग दूसरोंकी सेवाके लिए करें।

१६-१०-'५२ ——बसन्तपुर (सारन)

: ३१ :

अगर हम इस चीजको ठीक तरहसे समझ लें, तो गरीबीमें भी अमीरीसे बढ़कर आनंद पा सकते हैं। अमीरीमें आत्मसमाधान नहीं होता, इसलिए हम अमीरी नहीं चाहते। कबीरदासने कहा है—'**मन लागो मोरा यार फकीरीमें। जो सुख पायो गरीबीमें, वह सुख नाहीं अमीरीमें ॥**' गरीबीमें भी अगर प्रेम और सद्भावना रही तो वह अमीरीसे भी बढ़कर हो जाती है। कुंतीने भगवान्से वर माँगा था:

'विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यात् अपुनर्भवदर्शनम् ॥'

'भगवन्, मुझे हमेशा विपत्ति और गरीबी दो।' जब भगवान्ने उससे पूछा कि 'ऐसा वर क्यों माँगा' तो उसने जवाब दिया—'आपत्ति रही तो आपका स्मरण होगा और आपके दर्शनका भी मौका मिलेगा।'

हम यह नहीं चाहते कि आजके जैसी अमीरी-गरीबी रहे, हम तो कबीरदास जैसे गरीब बनना चाहते हैं। कबीर श्रीमान् नहीं था, गरीब था। बुनाईका काम करता था और मजदूरी लेता था, जो उसके लिए अमृतपान बन जाता था।

१६-१०-'५२ ——बसंतपुर (सारन)

: ३२ :

स्वराज्यके बाद इस देशमें हवा चली कि 'आजतक बहुत त्याग किया, अब भोग भोगना चाहिए।' लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। जहाँ त्यागके

साथ भोग भी होता है, वहाँ वह त्याग जीर्णवीर्य बन जाता है। जो चाहते हैं कि अपना त्याग वीर्यवान रहे, वे नयी-नयी तपस्या करते हैं। तपस्वी पुरुष क्लेश और तपकी सफलता देखते ही फौरन नये क्लेश और तपका आरंभ कर देता है।

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।'

इसलिए स्वराज्यकी तपस्याका फल मिलते ही फौरन हमें नये तपका आरंभ करना चाहिए। उसीसे हमारा तेज बढ़ेगा। राजनैतिक आजादीके बाद आर्थिक आजादीका ही कार्यक्रम उठाना होता है। इसलिए स्वराज्य-प्राप्तिके बाद हमें अब भूदानके ही काममें लग जाना चाहिए, जिससे आर्थिक आजादी प्राप्त होनेवाली है।

१६-१०-'५२ —अमनौर (सारन)

: ३२ :

गीतामें भक्तके प्रतिपादित लक्षण ये हैं:

'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च'

यहाँ भक्तके तीन लक्षण बताये गये हैं—(१) किसीसे द्वेष, मत्सर या वैर न करना, (२) सबके साथ मैत्री करना और (३) सबपर करुणा और दया रखना। भक्तकी पहचान बाह्य लक्षणोंसे—जैसे गाने, नाचने आदिसे नहीं, बल्कि ऊपर बताये हुए तीन लक्षणोंसे होती है। नाचने, गाने, दाढ़ी बढ़ाने, बदनपर भभूत लगाने या दूध पीनेसे कोई भक्त नहीं बन जाता। दूध तो गायका बछड़ा भी पीता है, लेकिन वह भक्त नहीं है। पदल घूमनेवाले भी भक्त नहीं होते। कई मुसाफिर, व्यापारी, भिखारी और ठग पैदल घूमते हैं, लेकिन इनमेंसे कोई भक्त नहीं कहलाता। लोग अक्सर समझते हैं कि भक्त तो नाचनेवाला, गानेवाला, बजानेवाला होता है। लेकिन भक्तके ये लक्षण नहीं हैं। हाँ, भक्त नाच सकता है, गा सकता है और दूसरे काम भी कर सकता है। जिसमें प्रेम, करुणा और द्वेष-का अभाव दीखे, तुरंत पहचान लो कि वह भक्त है।

भक्त प नहीं करता। हम किससे द्वेप करते हैं ? जो हमसे आगे बढ़े हुए हैं, हमसे ज्यादा ज्ञानी हैं, ज्यादा ताकतवर हैं, ज्यादा पैसेवाले हैं, ज्यादा सुखी हैं। परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए।

समाजमें कुछ हमसे बड़े होते हैं, कुछ हमारी बराबरीके होते हैं और कुछ हमसे छोटे होते हैं। (१) जो हमसे बड़े होते हैं, उनको लोग प्राय: नीचे गिरानेकी कोशिश करते हैं। हम चाहते हैं कि वे हमसे आगे न जायें। लेकिन आगे जानेवालोंको गिराना नहीं चाहिए। समाज-रचना ऐसी ही होनी चाहिए कि जो आगे जाते हैं, उनको देखनेसे सबको संतोष हो। (२) कुछ लोग हमारी बराबरीके होते हैं। उनके साथ सहयोगसे काम करना चाहिए। उनके लिए मनमें मैत्रीकी भावना होनी चाहिए, सख्यभाव होना चाहिए। लेकिन आज तो हालत यह है कि जो बराबरीके होते हैं, उनकी आपसमें बनती नहीं है। वे मिल-जुलकर काम नहीं करते। एक ही पक्षम दो गुट हो जाते हैं, जिनकी आपसमें नहीं बनती। भाई-भाईकी नहीं बनती और पड़ोसी-पड़ोसीके बीच भी अनबन हो जाती है। सहयोगसे, मिल-जुलकर, कंधेसे कंधा लगाकर काम करना चाहिए। (३) समाजमें कुछ हमसे छोटे होते हैं। जो छोटे हैं, दुखी हैं, उनके लिए मनमें करुणा और दया होनी चाहिए।

भक्तके ये तीन लक्षण हैं। हम चाहते हैं कि सारे समाजमें भक्तके ये लक्षण प्रकट हों। सब भक्त बनें। बड़ोंके लिए आदर, बराबरीवालोंके प्रति मैत्रीकी भावना और छोटोंके प्रति करुणा, ये तीनों लक्षण प्रकट हों। हमें ऐसी समाज-रचना करनी है जिसमें आदर, प्रेम और करुणा आदि भावनाएँ स्वाभाविक हो जायँ। ऐसी समाज-रचनाके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहिए। भूदान-यज्ञके द्वारा वैसा वातावरण पैदा हो रहा है।

२१-१०-'५२

—सीतलपुर (छपरा)

: ३४ :

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।'

'सोनेके ढक्कनसे सत्यका मुख ढँका हुआ है।' हर कोई समझ सकता है कि अगर हम गरीबोंकी कद्र नहीं करते तो कोई भी सुखी नहीं हो

सकता। यह बात समझना कोई मुश्किल नहीं है, परन्तु सत्यका मुख सुवर्णसे ढँका रहता है। सत्यदर्शनमें मोह बाधा डाल रहा है। हमारी कोशिश इस मोहसे मुक्त होनेकी है।

वस्तुके स्वरूपको समझना या पहचानना कठिन नहीं है, उसे ग्रहण करना ही कठिन है। मोहके कारण लोग इस चीजको नहीं समझ रहे हैं, परन्तु उन्हें समझाना कठिन नहीं है। सूर्यके उग जानेपर जागना कठिन नहीं होता। आज हिन्दुस्तानकी संपत्ति जिस तरह बँटी हुई है, उससे दुःख ही पैदा होता है, संपत्तिका पूरा उपयोग नहीं हो पाता—यह बात समझना कठिन नहीं है; परन्तु हमें मोहके कांचनके आकर्षणसे मुक्ति पाना है। लेकिन यह जो मोहमाया है, उससे हम कैसे मुक्त हो सकेंगे ? सत्य कैसे स्पष्ट होगा ? हमें भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'भगवन्, हमें इस मोहसे मुक्त करो।' मोहसे मुक्ति पाना ही मुख्य बात है, जिसके लिए हमें सब कुछ करना है।......['मैं न सिर्फ जमीनका, बल्कि संपत्तिका भी छठा हिस्सा माँग रहा हूँ। बेजमीन किसानको सिर्फ जमीन देनेसे काम नहीं चलेगा। उसे तो हल, बैल आदि अन्य साधन भी देने होंगे, तभी वह काश्त कर सकेगा। इसलिए भूमिके साथ संपत्तिका भी मैं दान माँग रहा हूँ। हर मनुष्यपर हमारी माँग लागू होगी। हमारे पास भूमि, संपत्ति, श्रमशक्ति, बुद्धि, जो भी कुछ है, उसका एक हिस्सा दरिद्रनारायणके लिए अर्पण करना है।']

२३-१०-'५२ —पटना

: ३५ :

हमें भगवान्ने बुद्धि, शक्ति, संपत्ति या जो कुछ भी दिया है, उसका उपयोग समाजकी सेवाके लिए करना चाहिए। हमें वह सब समाजको अर्पित कर देना चाहिए। जितना अपने लिए आवश्यक है, उतना ही लेना चाहिए। जिस तरह यज्ञमें आहुति देते समय कहते हैं—'इन्द्राय इदम्, न मम,' 'अग्नय इदम्, न मम'—यह इंद्रके लिए है, मेरे लिए नहीं, यह अग्निके लिए है, मेरे लिए नहीं; उसी तरह अब हमें कहना चाहिए—'समाजाय

इदन् न मम', 'राष्ट्राय इदम्, न मम' अर्थात् यह सब समाजके लिए है, मेरे लिए नहीं, यह सब राष्ट्रके लिए है, मेरे लिए नहीं। तू जो पैदा करता है, वह सब समाजको अपण कर दे, फिर समाजकी तरफसे तुझे जो मिलेगा, वह अमृत होगा।

मैं चाहता हूँ कि जमीन सबकी हो जाय। मैं चाहता हूँ कि कारखानोंमें मजदूर और मालिकका भेद न रहे। सब सेवक बनें और अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करके सब कुछ समाजको अर्पण करें। फिर समाजसे अपने जीवन-निर्वाहके लिए जो मिले उसीमें संतुष्ट रहें। इतना ही नहीं, बल्कि हरएक व्यक्तिको यह सोचना चाहिए कि मेरी संतान मेरे लिए नहीं, समाजके लिए है। जो अक्ल मुझे मिली है, वह स्वयंभोग्य नहीं, समाजके लिए है। ऐसा अपरिग्रह मैं समाजमें लाना चाहता हूँ। वैभव और संपत्ति बढ़ाना चाहता हूँ, पर समाजकी। समाज नारायणस्वरूप है, तो लक्ष्मी उसके पास जाने ही वाली है। इसमें किसीको डरनेकी जरूरत नहीं। हम एक सुंदर समाज बनानेवाले हैं और इसीकी बुनियाद जमीनका मसला है। मैं यही समझा रहा हूँ कि जमीन सबके लिए है।

आज हिंदुस्तानमें सब उद्योग टूट गये हैं और जमीनकी माँग बढ़ रही है। इसीलिए अगर जमीनका मसला लेकर अपरिग्रहकी तालीमका आरंभ करते हैं तो उस विचारका समाजके मनमें अच्छी तरह प्रवेश होगा। विष्णुके पास लक्ष्मी पड़ी हुई है, परन्तु वह उसके प्रति अत्यन्त उदासीन है। समाजमें सब पड़ा होना चाहिए। परन्तु व्यक्तिको उसमेंसे उतना ही लेना चाहिए जितना आजके लिए जरूरी है। कलकी चिंता भी नहीं करनी चाहिए।

यह मत समझिये कि जो बड़े-बड़े परिग्रही हैं, उन्हींको समझाना है। जो कम परिग्रही हैं उनको भी समझाना आवश्यक है। एक छोटी-सी लंगोटीमें भी आसक्ति रह सकती है। इसलिए सबको समझाना है कि जिसके पास जो कुछ है और वह उसके घरमें है तो भी समाजके लिए

है। जितने घर ह, वे सब भारत-सरकारकी वैंक होने चाहिए। आज तो सरकारको लोन (कर्ज) लेना पड़ता है, टैक्स लगाना पड़ता है, अमेरिकाका सहारा लेना पड़ता है या नासिकके छापाखानेकी शरण लेनी पड़ती है। लेकिन में इन सबसे भिन्न, एक पाँचवाँ प्रकार वता रहा हूँ। सरकारकी माँग होते ही सारे देने लग जायँगे, अगर वैसी लोकप्रिय सरकार बने। वह बन भी सकती है। हर घरवाला सरकारसे कहेगा कि 'यह तो आपकी चीज है चाहे जितना लो। मुझे चिंता नहीं कि मैं कल क्या खाऊँगा। आप जो खिलाओगे, वह खाऊँगा।' ऐसी सरकार और ऐसा समाज बन सकता है—यह महान् विचार हमें दुनियामें फैलाना है। इसीलिए श्रीमानोंसे ही नहीं, वल्कि गरीबोंसे भी जमीन माँगनी है। हरएकसे कहना है कि तुमसे भी नीचे कोई है, जिसकी ओर देखो। तुम्हारे पास शामकी रोटी नहीं है, पर दुनियामें ऐसा भी कोई है जिसके पास अभीके लिए भी रोटी नहीं है; तो उसके लिए एक टुकड़ा निकालना तुम्हारा धर्म है। होना तो यह चाहिए कि साराका सारा समाजको अर्पित कर दिया जाय। परन्तु आज वह बन नहीं सकता और समाज भी उसके लिए तयार नहीं। फिर भी आज कमसे कम एक टुकड़ा यानी छठा हिस्सा तो देना ही चाहिए।

३१-१०-'५२ —टिकारी (गया)

: ३६ :

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः......।'

उपनिषद्में एक राजा कहता है कि 'मेरे राज्यमें कोई चोर न हो।' वह यह भी कहता है कि 'मेरे राज्यमें कोई कंजूस न हो।' क्योंकि जहाँ कंजूस होते हैं वहाँ चोरोंका होना लाजिमी है। कंजूस चोरोंको पैदा करते हैं। कंजूसको 'चोरका बाप' कहना चाहिए। चोर उसके औरस पुत्र हैं। हम औरस पुत्रोंको तो जेल भेजते हैं और पिताको खुला छोड़ देते ह। पिता शिष्ट वनकर समाजमें घूमता है, गद्दीपर वैठता है—यह कहाँका न्याय है? [गीतामें कहा गया है कि 'स्तेन एव सः'—वह चोर ही है। हम उसे पहचानते नहीं कि वह चोर है, परन्तु है वह चोर ही। आज तो हम

मानते हैं कि गीता तो संन्यासियोंकी पोथी है। वह गृहस्थोंके कामकी नहीं। इस तरह हमने गीताको भी संन्यास दे दिया है।]

आज दुनिया परिग्रहको चोरी नहीं मानती। आज तो परिग्रहका राज्य चल रहा है। परिग्रहके लिए ऐसे कानून खड़े किये गये कि वह गलत नहीं, वल्कि कानूनी माना गया। कानून चोरीको गुनाह मानता है, परन्तु जिस किसीने संग्रह करके उस चोरको चोरीकी प्रेरणा दी उसको आजका समाज चोर नहीं मानता और वह कोई गैर-कानूनी वात कर रहा है, यह भी नहीं माना जाता। परन्तु संग्रह करनेवाला भी चोर ही है, यह हमें भली भाँति समझ लेना चाहिए।

३१-१०-'५२ —टिकारी (गया)

: ३७ :

हमारे पास जितनी भी जमीन, संपत्ति, वुद्धि और शरीर-शक्ति है—सबके लिए है, आम जनताके लिए हमें प्राप्त हुई है। ये अपनी निजी संपत्तियाँ नहीं, वल्कि दैवी-संपत्तियाँ हैं। भूमि, संपत्ति, वद्धि और शक्ति परमेश्वरकी दी हुई हैं और उसीके उपयोगके लिए हैं। इसलिए उनको सवकी सेवामें लगाना चाहिए। सवका एक सामूहिक कुटुंव वनना चाहिए। जिस तरह कुटुंवमें हम मिल-जुलकर सव काम करते हैं, उसी तरह समाजमें भी करें—सव मिलकर सृष्टिकी उपासना करें।

'ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यम् करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।'

—'हम सव मिलकर काम करें और उसका जो परिणाम निकले, उसे सव मिलकर भोगें।' अपने सुखमें दूसरोंको हिस्सा दें और दूसरोंके दुःखमें स्वयं हिस्सा लें, यह एक महान् विचार भू-दान-यज्ञके पीछे है।

अभी हमने जो संकल्प किया है, वह तो केवल आरंभमात्र है। हमें सारी समाज-रचना ही वदलनी है। यह तो उसका श्रीगणेश ही है। आगे उसका विस्तार होगा। अभी तो हम वुनियादका काम करने जा रहे

हैं। फिर उसपर एक सुंदर मकान खड़ा करेंगे, जिसकी छायामें हम सब सुखी होंगे।

'समानीव आकूतिः। समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति ॥'

—'हम सबका मन समान हो। हम सबका हृदय समान हो। यही हम सबका मंत्र हो।' इस तरह हमें साम्ययोगकी सिद्धि करनी है। उसीकी साधनाके लिए पहला कदम भूदान-यज्ञका है। भूमि सब तरहकी संपत्तियों-के उत्पादनका सबसे बड़ा साधन है, सबके कामके लिए उसका सम्मिलित और सम्यक् उपयोग होना चाहिए, उसमें किसीका न्यूनाधिक अधिकार न होना चाहिए।

२-११-'५२ —गया

: ३८ :

मेरा काम तबतक पूरा नहीं होगा, जबतक हरएक भूमिपुत्रका भूमि-पर अधिकार नहीं हो जाता। मुझसे पूछा जाता है कि 'जो काश्त नहीं करते, क्या उन्हें भी जमीन दी जायगी?' मेरा जवाब है—'जी नहीं, उन्हें जमीन नहीं दी जायगी। जमीन तो उन्हींको दी जायगी जो काश्त करते हैं।' परन्तु जमीनपर हक सबका माना जायगा। जिनको खेतीका ज्ञान नहीं, उन्हें मैं अशिक्षित समझूंगा। अगर पढ़ने-लिखने को ही शिक्षणकी कसौटी माना जाय तो मुहम्मद पैगंबर, शिवाजी महाराज, रामकृष्ण परम-हंस, हैदरअली—ये सब अशिक्षित माने जायँगे। मैं मानता हूँ कि हर-एकको पढ़ना-लिखना आना चाहिए, परन्तु वह कोई तालीमकी कसौटी नहीं बन सकती। उससे बेहतर कसौटी तो यह होगी कि जो खेतीका काम नहीं जानता, उसे अशिक्षित समझा जाय। हिन्दुस्तानके हर बच्चेको खेतीका काम सिखाया जाय। अगर वह नगरका बच्चा है तो उसे सब्जी—तरकारी पैदा करना सिखाया जाय। खेतीके जरिये किसानके जीवनके साथ एकरूप बननेकी कोशिश करना ही सच्ची तालीम है। यह तो

आगेकी बात है, परन्तु आज जो काश्त करना जानते हैं उन्हींको हम जमीन देना चाहते हैं। हरएकका जमीनपर हक है—यह विचार हम समझा रहे हैं। यह क्रान्तिकारी बात है, पर नयी नहीं है। वेदोंमें कहा गया है कि समाजमें पाँच प्रकारके किसान होते हैं—ब्राह्मण-किसान, क्षत्रिय-किसान, वैश्य-किसान, शूद्र-किसान और वन्य जातिके किसान :

'पंचविशः पंचआरीः पंचकृष्टयः ।'

उन्होंने मनुष्यके लिए ही 'किसान' शब्द गढ़ा था। इसीलिए कहता हूं कि पाँच प्रकारके किसान होते हैं। इसका मतलब यह है कि जो खाना चाहता है, उसपर अन्न-निर्माण करनेकी जिम्मेदारी है। फिर भी हम समाजमें कामोंका बँटवारा तो करेंगे ही। लेकिन अन्न पैदा करना हरएकका धर्म माना जायगा। जिसे इस धर्मसे मुक्ति मिलेगी, उसे अधिक कठिन काम करना पड़ेगा। परन्तु उत्पादनका काम करना हरएकके लिए अत्यंत लाजिमी माना जायगा।

२-११-'५२ —गया

: ३९ :

हम हर रोज सुबह-शाम भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं। यह बहुत अच्छा रिवाज है। हम चाहते हैं कि हर घरमें सुबह-शाम इसी तरह ईश्वर-स्मरण हुआ करे। हम जो प्रार्थना करते हैं, उसकी एक किताब भी है। उसके अनुसार आप प्रार्थना कर सकते हैं। परन्तु हमारा यह आग्रह नहीं कि आप वही प्रार्थना करें। हम चाहते हैं कि जिसको जिस तरहकी रुचि हो, उसीके अनुसार वह प्रार्थना करे। हमने अपना चुनाव उस प्रार्थनामें रखा है। वह सब धर्मोंके अनुकूल है। 'ओम् तत् सत् श्री नारायण तू' इस षट्पदीमें भगवान्‌के सारे नाम आ गये हैं। सब नाम लेनेसे बहुत आनंद होता है और हृदयकी एकता भी सधती है। हम रामधुन गाते हैं, उसमें राम और सीता, दोनोंके नामोंका उच्चारण करते हैं। राम परमेश्वर है और सीता भक्त—इसी निगाहसे उस तरफ देखना चाहिए। वैसे तो यह प्रार्थना सबको पसंद है, फिर भी आपके मनको जो अनुकूल मालूम

पड़े, उसीके मुताबिक प्रार्थना करें, परंतु भगवान्‌का स्मरण हर रोज करें। वैसे मनमें तो स्मरण कर लेते हैं, फिर भी सब मिलकर स्मरण करनेमें अधिक आनंद मालूम होता है। भगवान्‌ने कहा है :

'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥'

—'मैं चाहे वैकुंठमें या एकांतमें ध्यान करनेवाले योगियोंके हृदयोंमें भी गरहाजिर रहूँ, परन्तु जहाँ मेरे सब भक्त मिलकर भक्तिगान करते हैं, वहाँ मैं हाजिर रहता ही हूँ।' सब मिलकर एक साथ की गयी प्रार्थना भगवान्‌को पसंद आती है। हम तो चाहते हैं कि सारे गाँववाले मिलकर प्रार्थना करें। परन्तु कमसे कम कुटुम्बभरके तो साथ मिलकर प्रार्थना अवश्य करें।

८-११-'५२ —रानीगंज (गया)

: ४० :

यह मत कहिये कि हम तो कलियुगमें हैं। जिस युगमें आप रहना चाहते हैं वही आपके लिए है। युग हमें स्वरूप नहीं देता, हम उसे स्वरूप देनेवाले हैं। हम 'कालपुरुष' हैं। यह सारी सृष्टि हमारे हाथमें पड़ी हुई है। गीतामें कहा है :

'गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥'

—'यह जो सारी जड़ सृष्टि है, उसका धारण हम जीव कर रहे हैं।' सारी सृष्टि हमारे हाथमें है। हम चेतन हैं, हम उसको आकार देनेवाले हैं। मिट्टीका घड़ा बनाना है तो मिट्टी शिकायत नहीं करती कि मुझे अमुक आकार दो। आप चाहे जो आकार उसे दे सकते हैं। इसी तरह आप युगको चाहे जो आकार दे सकते हैं। यह युग आपका है।

आजके इस युगमें भी चर्खा चल सकता है। मैंने दिल्लीमें चक्की पीसी और उससे आटा निकला, बावजूद इसके कि यह यंत्र-युग है और वह दिल्ली थी ! इसलिए युग तो आपके हाथोंमें है।

१०-११-'५२ —औरंगाबाद (गया)

: ४१ :

जबतक सबको संपत्तिका हक नहीं मिलता तबतक संपत्तिकी वृद्धि नहीं हो सकती। जो मजदूर दूसरोंके खेतोंपर मजदूरी करते हैं, उन्हें अपने काममें उत्साह नहीं मालूम पड़ता। वे उस काममें अपना तन लगा सकते हैं, मन नहीं। उत्पादन सिर्फ शरीर लगानेसे नहीं होता। उसमें मन, प्राण और प्रेम लगाना होता है, तभी लक्ष्मी प्रसन्न होती है। इसलिए हम भूमिदानके जरिये काश्त करनेवालोंको जमीनके मालिक बनाना चाहते हैं। लक्ष्मी तब बढ़ती है, जब मनुष्य जी-जानसे उद्योग करता है। लूटनेसे लक्ष्मी बढ़ती नहीं, बटोरी जाती है। अगर मैंने किसीको लूटा, तो मेरी जेबें भर जायँगी, परन्तु उससे संपत्तिमें वृद्धि नहीं हो जाती। सिर्फ जो संपत्ति पैदा हो चुकी थी, वही मैंने बटोर ली। मैं धनी हो गया, परन्तु लक्ष्मी बढ़ी नहीं। लक्ष्मी तो मेहनतसे ही बढ़ती है।

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।'

—'उद्योग करनेवाले सिंहके जैसे पुरुषके पास लक्ष्मी आती है।' दूसरोंके खेतोंपर काम करनेवाले मजदूर दिल लगाकर काम नहीं करते। वे काममें चोरी करते हैं और उनके मालिक पूरी मजदूरी न देकर, दाममें चोरी करते हैं। मजदूर काममें चोरी करते हैं, तो मालिक दाममें। हरएक एक-दूसरेको ठगानेकी कोशिश करता है। इस तरह देशका नुकसान होता है। संपत्ति तभी बढ़ सकती है, जब संपत्ति पैदा करनेवालोंको उसमें उत्साह मालूम हो। इसीलिए मेरा मानना है कि भूमिदान-यज्ञसे देशकी संपत्ति बढ़ेगी।

२८-११-'५२

—रातू (राँची)

: ४२ :

मैं जो काम कर रहा हूँ वह मेरा नहीं, ईश्वरका काम है। मैं तो उसका औजार बनकर काम कर रहा हूँ।...... मैं तो जप कर रहा हूँ और निरंतर करूँगा। मनु महाराजने मुझे आज्ञा दी है—'ब्राह्मणको

निरंतर जप ही करना चाहिए। वह और कोई काम करे या न करे, उसके जपसे ही दुनियामें मैत्रीकी भावना बढ़ेगी।'—

'जप्येनैव तु संसिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यत् न वा कुर्यात्......॥'

मैं तो निरंतर तप भी करता आया हूँ, लेकिन अब तपका भार मुझ-पर मत सौंपिये। आप तप कीजिये और मैं जप करूँगा। तो फिर जिन ऋषियोंका हम स्मरण करते हैं, उनका अनुभव हम ले सकते हैं। और भरतभूमिको फिरसे ऋषियोंकी भूमि बना सकते हैं।

२८-११-'५२ —रातू (राँची)

: ४३ :

एक जमाना था जब समाज बाल्यावस्थामें था, इसलिए राजाकी आवश्यकता महसूस होती थी। उस समय राजाका अनुशासन मानना, उसकी आज्ञाका पालन करना प्रजाका धर्म माना जाता था। लेकिन अब समाज बाल्यावस्थामें नहीं रहा, जवान हो गया है। विज्ञानके कारण आज सामान्य लोगोंको भी वह ज्ञान हासिल है, जो प्राचीन जमानेमें बड़े लोगोंको भी न था। अकबर बादशाहको मालूम न था कि मास्को अमेरिकामें है या रूसमें, पर आज तो स्कूलके बच्चेको भी यह बात मालूम है। उस समय राजाकी बात मानना जरूरी था, पर अब जरूरी नहीं रहा; बल्कि अब तो लोग ही अपने प्रतिनिधि चुनते और वे लोगोंकी हिदायतोंपर अमल करते हैं। इसलिए अब सारे समाजकी रचना उसीके अनुसार बनानी है। उस जमानेमें 'राजा कालस्य कारणम्' कहा जाता था, पर अब राजा नहीं, 'प्रजा कालस्य कारणम्' कहना होगा।

राजनैतिक क्षेत्रमें इस तरह जैसा परिवर्तन हुआ है, वैसा ही आर्थिक क्षेत्रमें भी करना है। आर्थिक क्षेत्रमें भी समता प्रस्थापित करनी है। समताके लिए यह जरूरी है कि जो चीज सबके लिए अत्यंत जरूरी

मानी जाती है, वह सबके लिए सुलभ हो जाय। जैसे—हवा, पानी, सूरजकी रोशनी और भूमि। ...... किसी जमानेमें समानताके लिए जमीनके बँटवारेकी जरूरत नहीं थी, क्योंकि उस समय जमीन काफी पड़ी थी और जनसंख्या कम थी। लेकिन आज जमीनके बँटवारेकी जरूरत है। किसी जमानेमें सबको वोटके हक्की जरूरत नहीं थी, लेकिन आज है।

२४-११-'५२ —लोहरदगा (राँची)

: ४४ :

अस्तेय और अपरिग्रह, दोनों मिलकर अर्थशुचित्व पूर्ण होता है, जिसके वगैर व्यक्ति और समाजके जीवनमें धर्मकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। सत्य और अहिंसा तो मूल हैं, लेकिन आर्थिक क्षेत्रमें दोनोंका आविर्भाव अस्तेय और अपरिग्रहसे ही हो सकता है। और आर्थिक क्षेत्र जीवनका बहुत ही बड़ा अंग है, इसलिए धर्मशास्त्र उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता; बल्कि उसका नियमन और नियोजन करनेकी जिम्मेवारी धर्म-विचारपर आती है। इसलिए मनुने विशद रूपसे कहा है:

'यः अर्थशुचिः सः शुचिः।'

—'जिसके जीवनमें आर्थिक शुचिता है, उसका जीवन शुचि है।'

२५-११-'५२ —कुरु (राँची)

: ४५ :

विज्ञान और आत्मज्ञान—इन दो पंखोंपर मानव-पक्षी गगन-विहार कर सकता है। विज्ञान हमारे लिए सब तरहकी सहूलियतें पैदा करता है, लेकिन आत्मज्ञानके अंकुशके विना विज्ञानका उपयोग भी गलत हो सकता है। इसीलिए हमने इस बातपर जोर दिया कि विज्ञानके साथ-साथ अहिंसा आनी चाहिए। अहिंसा आत्माका गुण है। गीता कहती है:

'य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥'

—'आत्मा न किसीका नाश करता है और न उसका नाश होता है।' अहिंसा आत्माका मूल गुण है। विज्ञान और अहिंसाके योगसे हम इस धरतीपर

स्वर्ग ला सकते हैं। परन्तु अगर हिंसा चलाओगे याने आत्माके गुणोंकी ओर ध्यान नहीं दोगे, तो यही विज्ञान मानवके घातका कारण बन जायगा।

२९-११-'५२ —रांची

: ४६ :

आज जो भिन्न-भिन्न देशोंके नेता हैं, वे कितने बच्चे हैं। सारे मनुष्यों-पर काबू करनेका दावा करते हैं, पर अपने ऊपर काबू नहीं पा सकते—अपने मन और इंद्रियों आदिपर काबू नहीं पा सकते, क्रोधादि-से मुक्त नहीं हो सकते। जिनका अपने ऊपर काबू नहीं, वे दूसरोंको मार्ग दिखानेका दावा करते हैं! वे एक प्रवाहमें बह रहे हैं। लोग कहते हैं कि विश्वयुद्ध होगा तो? मैं कहता हूँ, होने दो। विश्वयुद्ध तो ईश्वर-कृत होता है। उसमें सारे नेता बह जाते हैं। क्या विश्वयुद्ध-का नेतृत्व मनुष्य करते हैं? चर्चिलसे जब लड़ाईके उद्देश्य पूछे गये, तो उसने जवाब दिया कि 'विश्वयुद्धका उद्देश्य है जीत हासिल करना।' इसका मतलब यह है कि लड़ाई लड़ी जाती है तो उसमें उद्देश्य कुछ नहीं होते, वे सारे लाचार होकर लड़ते हैं—यंत्रवत् बनकर, प्रवाहमें बहकर। प्रवाहसे कैसे बचना, यह वे नहीं जानते। आज हिंदुस्तानकी आवाज दुनियाभरमें पहुँच रही है। यद्यपि हिंदुस्तानके पास भौतिक शक्ति कम है, फिर भी दूसरी एक अपूर्व शक्ति है। यहाँपर एक ऐसा नेता निकला जिसने राजनैतिक आजादी हासिल करनेका एक अजीब शस्त्र देशको दिया। हिंदुस्तानकी आजादीकी लड़ाई अजीब किस्मसे लड़ी गयी। दुनियाके इतिहासमें वह एक विशेष प्रकारकी लड़ाई मानी जायगी। उसका परिणाम दुनियापर हो रहा है। हिंदुस्तानकी प्राचीन सभ्यतापर, जिसने मानवका आवाहन किया, दुनियाकी आशा लगी हुई है। इसीलिए हमारी आवाज दुनियाभरमें पहुंचती है। परन्तु वह दुर्बल आवाज है, उसका दुनिया-पर प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि हमारी बाकीकी सारी समस्याएँ वैसी ही पड़ी हुई हैं। हिंदुस्तान उनको किस ढंगसे हल करता है, इसपर सारा

निर्भर है। हिंसासे हल करो तो दुनिया समझेगी कि ये भी हमारे जैसे ही वहावमें वह रहे हैं। लेकिन अगर हम अपने मसले आत्माके, अहिंसाके तरीकेसे हल करनेकी सोचेंगे तो हिंदुस्तान बचेगा और दुनियाको तारनेवाला वन जायगा। मनु महाराजने कहा है:

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'

—'इस भूमिमें जो ज्ञानी पैदा होंगे, उनसे सारी दुनियाके लोग सवक सीखेंगे।' मनु महाराजका यह भविष्य तव सही होगा, जब हिंदुस्तान आत्माके, अहिंसाके तरीकेसे अपने मसले हल करेगा।

भूमिका मसला तो हल होकर ही रहेगा। दूसरे देशोंमें यह दूसरे तरीकोंसे हल हुआ है, परन्तु उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए अगर हम भी वे ही तरीके आजमायेंगे, तो उसमें हमारी कोई विशेषता नहीं है और न उससे हम सुखी ही होंगे। परन्तु अगर यह मसला अपने ढंगसे हल करेंगे, तो हम दुनियाको वचा सकेंगे। इसलिए मेरी सारी कोशिश यही है कि हमारे सारे मसले आत्माके तरीकेसे हल हों।

२९-११-'५२ —राँची

: ४७ :

एक वार एक आदमी परमेश्वरके पास पहुँचा। परमेश्वरने उसे डाँटा कि 'मैं जब भूखा था तब तूने मुझे खिलाया नहीं, मैं जब प्यासा था तब तूने पानी पिलाया नहीं और मैं जब ठंढमें ठिठुर रहा था तब तूने मुझे कपड़ा दिया नहीं।' यह सुनकर वह ताज्जुवमें पड़ गया। उसने कहा कि 'मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि तू कव भूखा-प्यासा था?' तब परमेश्वरने उससे कहा कि 'ठीकसे सोच, तेरे इर्द-गिर्द कितने भूखे थे, जिन्हें तूने नहीं खिलाया। इसका मतलव है कि तूने मुझे ही नहीं खिलाया। तेरे इर्द-गिर्द कितने प्यासे थे, जिन्हें तूने पानी नहीं पिलाया, तो मुझे ही नहीं पिलाया। तेरे इर्द-गिर्द कितने लोग ठंढमें ठिठुर रहे थे,

जिन्हें तूने कपड़ा नहीं दिया। इसका मतलब है कि तूने मेरी ही फिक्र नहीं की।'

इसका मतलब यह है कि इस दुनियामें जो लोग दीखते हैं, वे सबके सब हमारे भाई हैं, क्योंकि वे सारे मेरे ही रूप हैं। उनकी सेवामें जुट जाना हमारा कर्तव्य है। सब धर्मोंने यही बात कही है। वेदोंमें कहा गया है--

'ब्रह्मदाशा, ब्रह्मदासा, ब्रह्मैवेमे कितवाः।'

—'ब्रह्म कहाँ है ? गुलाम, दुःखी, मच्छीमार और पापियोंमें परमेश्वर-को देखो।'

३-१२-'५२ —मुरहु (राँची)

: ४८ :

आज हम मेहनत करनेवालोंको नीच मानते हैं। यह बिल्कुल गलत विचार है। जो खाता है, उसे मेहनत करनी ही चाहिए। उत्पादक-परिश्रम किये बगैर कोई भी खानेका हकदार नहीं हो सकता। गिबनने अपने 'रोमन-साम्राज्यके इतिहास' में लिखा है कि 'रोमके लोग जबतक मेहनत करनेमें प्रतिष्ठा मानते थे, तबतक रोमका उत्थान हुआ। पर जब वे फैशनमें पड़े, नाजुक बने, तभी रोमका पतन हुआ।' आज हमारी भी यही हालत है। आज भी लड़कोंको ऐसी तालीम दी जा रही है जिससे वे नाजुक बनते हैं, काम करनेके लिए नाकाबिल होते हैं। अगर ऐसी ही तालीम चले तो गिरावटके सिवा कुछ नहीं होगा। यही बात महाभारतमें व्यासने लिखी है, 'अगर उन्नति करना चाहते हो तो मेहनत करो।' भगवान् कृष्णने भी मेहनत की। उन्होंने गीतामें कहा है:

'यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'

—'मैं एक क्षणके लिए भी आलसी रहूँ तो ये सारे लोग खत्म हो जायँगे, इसीलिए मैं निरंतर मेहनत करता हूँ।' परन्तु आज हम इस बातको भूल गये हैं। जो जमीनपर मजदूरी करते हैं, वे जबतक जमीनके

मालिक नहीं वनते—जवतक उन्हें प्रतिष्ठा नहीं दी जाती तवतक देशका उत्थान नहीं होगा।

८-१२-'५२ —चक्रधरपुर (सिंहभूम)

:४९:

हमारे पास शक्ति कम नहीं है, परन्तु हमारे बहुत सारे कार्यकर्ता आज संस्थाओंमें फँसे हुए हैं। वे बहुत काम कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए संस्थाको फेंकनेकी, तोड़नेकी शक्ति होनी चाहिए। गांधीजीमें वह शक्ति थी। वे वड़ी-वड़ी संस्थाएँ खड़ी करते और तोड़ देते थे। उन्होंने सावरमती-आश्रम खड़ा किया, गांधी-सेवा-संघ जैसी वड़ी संस्था खड़ी की, लेकिन एक क्षणमें सव तोड़ डाला और वहाँके सव आश्रमवासी आन्दोलनके समय कामके लिए वाहर निकल पड़े। गांधी-सेवा-संघ तो इतनी बड़ी संस्था वन गयी थी कि लोगोंका यह ख्याल हो गया कि वह कांग्रेससे स्पर्धा करने लगी है। पर उन्होंने उसे भी खत्म कर दिया। जव वे वर्धा छोड़कर गये तो हमेशाके लिए चले गये। अगर वे रहते तो भी वहाँ वापस आनेवाले नहीं थे। वेदोंमें सूर्यकी महिमा वतायी गयी है:

'तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं।
मध्या कर्तो वितर्तं संजभार संजभार॥'

—'अपनी सारी किरणें फैली हुई होनेपर भी वह एक क्षणमें सवको खींच लेता है।' खींचनेकी यह कितनी महान् शक्ति उसमें है। ऐसी ही शक्ति गांधीजीमें थी। वारडोलीका महान् आन्दोलन एक क्षणमें उन्होंने वंद कर दिया। हिंदुस्तानभरमें उसपर टीका-टिप्पणी हुई, पर उन्होंने उसकी पर्वाह नहीं की।

भूदान-यज्ञका काम ऐसा क्रान्तिकारी काम है कि इसके आधारसे और सव कार्य फलेंगे और यदि यह काम नहीं हुआ तो दूसरे काम टिकनेवाले नहीं हैं। भूदान-यज्ञ सफल न हुआ तो न खादी टिकेगी, न ग्रामोद्योग। इसीलिए ऐसे मौकेपर हमारे कार्यकर्ताओंमें परित्यागकी भावना होनी

चाहिए। हमें संस्थाओंकी आसक्ति छोड़कर इस काममें कूद पड़ना चाहिए। संध्याके समय जिस प्रकार सूर्य अपनी सब किरणोंको खींच लेता है, उसी प्रकार हममें भी अपने सभी कामोंको समेट लेनेकी शक्ति होनी चाहिए।

४-३-'५३ —चाण्डिल

: ५० :

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

मैं चाहता हूँ कि आप कार्यकर्ता लोग अपने सारे काम छोड़कर भू-दानके काममें ही सारा समय दें। बाकीकी सब बातें छोड़कर—अच्छी-अच्छी बातें भी छोड़कर—इसमें आयें। यह मैं कोई नयी बात नहीं बता रहा हूँ। भक्तिमार्गमें यह आदेश है कि अधर्मको तो छोड़ना ही पड़ता है, बल्कि धर्मको भी छोड़ना पड़ता है। **'सर्वधर्मान्......'** भगवान्ने कहा है, 'सब धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ।' यह है भक्तिमार्ग! जहाँ हम भक्तिकी बात करते हैं, वहाँ अगर छोटे-छोटे धर्मोंकी गुंजाइश रखते हैं तो हम निष्ठावान् नहीं कहे जा सकते और हमारी भक्ति सफल नहीं हो सकती। यह भक्तिमार्गकी विशेषता है कि उसमें सब धर्मोंका त्याग करना पड़ता है। और यह जो अपना मार्ग है वह भक्तिमार्ग ही है, क्योंकि हम सारे समाजको एकरस बनाना चाहते हैं तो भक्तिके सिवा यह बात होनेकी नहीं। हम प्रेमभाव पैदा करना चाहते हैं तो वही हमारा मुख्य धर्म है। बाकीके छोटे-छोटे काम और छोटे-छोटे धर्म, जो हमने मान रखे हैं, वे इस भक्तिके लिए छोड़ देने पड़ते हैं। तो आप लोग सब धर्मोंका त्याग करें और इस काममें लग जायँ, यह मेरी माँग है।

६-३-'५३ —चांडिल

: ५१ :

ऐसे आश्रमोंकी बहुत आवश्यकता है जहाँ साधक, शोधक और सेवक रहते हों। आश्रमों द्वारा आसपासके ग्रामोंकी सेवा होनी चाहिए।

ग्रामोंसे दूर, पर वहुत दूर भी नहीं, ऐसे स्थानोंपर आश्रम होने चाहिए। 'तद् दूरे तद्वन्तिके'—'वह दूर है, फिर भी निरंतर पास है।' सेवा करनेके लिए ग्रामोंके पास रहना जरूरी है और ध्यान-चिंतनके लिए भी कुछ दूर रहना जरूरी है। साधकोंको कुछ एकांत और थोड़ा जन-संपर्क दोनों चाहिए। अत्यंत एकांतमें रहें तो उनकी ध्यान-साधना कुंठित हो जाती है। क्योंकि ध्यानमें जो दर्शन होगा, उसको सचाई प्रत्यक्ष व्यवहारकी कसौटीपर कसनेका मौका नहीं मिलेगा। इसलिए अखंड एकांत अच्छा नहीं। वैसे ही साधक २४ घंटे केवल जनसमुदायमें ही रहेगा तो जिस सेवाके लिए वह रहता है, वह सेवा अच्छी नहीं होगी। अच्छी सेवाके लिए भी यह जरूरी है कि हम कुछ देरतक अपनेको सेवासे अलग रखें, ताकि उस सेवामें क्या कमी है, किस प्रकारकी वृद्धिकी आवश्यकता है —इसका भान हो जाय। जो खेल खेलते रहते हैं, उन्हें भान नहीं होता कि खेल कैसे हो रहा है। परन्तु तटस्थ रहनेवाले जान सकते हैं कि हमारी सेवाका स्वरूप ठीक है या नहीं। इसमें कुछ कसर है या यह परिपूर्ण है, इसके निरीक्षणका मौका तव मिलता है, जव हम सेवासे थोड़े अलग हो जाते हैं। इसलिए हमारे आश्रम ऐसे स्थानोंपर होने चाहिए जो दूर हों, फिर भी ज्यादा दूर न हों।

१२-३-'५३ —निमड़ी (मानभूम)

: ५२ :

'भूदान-यज्ञ सफल नहीं होगा तो फिर क्या करना होगा ?'—यह शंका मत उठाओ। यही कहो कि 'हम उसे सफल करेंगे ही।'

'आत्मा सत्यकामः सत्यसंकल्पः।'

—'आत्मामें सत्यसिद्धिकी शक्ति है। इसलिए अगर हम इस तरहका सत्यसंकल्प करें तो वह सिद्ध होगा ही।'

४-४-'५३ —गिरीडीह (हजारीबाग)

: ५३ :

हम ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें गाँव स्वावलंबी होंगे। जो रोजमर्राकी चीजें हैं—जैसे खाना, कपड़ा—वे गाँवमें ही छोटे-छोटे उद्योगों द्वारा निर्माण होंगी। जो बड़े-बड़े धंधे हैं—जिनका संबंध सारे देशके ही साथ नहीं, दुनियाके भी साथ आता है—वे किसी खानगी व्यक्तिकी मालकियतके नहीं, समाजके होंगे। इसके बगैर सर्वोदय नहीं होगा। बड़े-बड़े धंधोंको—जिनका सारे देशके साथ संबंध आता है, जिनमें लाखों मजदूर काम करते हैं—चन्द लोगोंके हाथमें सौंपना खतरनाक है। इसपर ऐसा आक्षेप किया जाता है कि 'खानगी मालकियत न रही तो लोग पूरी अक्ल नहीं लगायेंगे। आज वे स्वार्थभावसे उसमें अक्ल लगाते हैं, इसलिए वे धंधे किफायतसे चलते हैं। अगर वे धंधे सरकारके हो जायँ तो देशको उद्योगपतियोंकी अक्लका लाभ नहीं मिलेगा।' अगर यह सही है तो हम सारे धर्महीन बन जायँगे। फिर हम सच्चे हिंदू, मुसलमान या ईसाई हैं, हमारा यह दावा गलत साबित होगा। जो काम समाजके लिए करना है, वह पूरी निष्ठासे करना है—इसीको धर्म कहते हैं। आज जिनके हाथोंमे बड़े-बड़े धंधे हैं, वे अपनी-अपनी अक्ल भी देशको समर्पित करें। मनुष्य खुदके लिए काम करता है तो उसे प्रेरणा मिलती है और देशके लिए करता है तो प्रेरणा नहीं मिलती—यह मानना एक अत्यंत अधर्मविचार है। पर दुनियामें आज यही विचार चल रहा है, क्योंकि दुनियामें अधर्म चलता है। हमारे शास्त्रोंमें चार वर्ण बताये गये हैं। उनमें हरएक वर्णका अपना-अपना धर्म होता है। वाणिज्य भी एक धर्म है। ब्राह्मणका धर्म है, ज्ञान देना। परन्तु वह उसे स्वार्थके लिए नहीं कर सकता, धर्म मानकर ही कर सकता है। क्षत्रियका धर्म है, राष्ट्रपर मर मिटना। इसी तरह वैश्यका धर्म है, व्यापार। उनके लिए व्यापार एक कर्तव्य है, सेवाका साधन है। किसान, क्षत्रिय और ब्राह्मणोंकी तरह वैश्य भी सेवा करेंगे और सेवकके नाते जो पायेंगे, उसीके वे हकदार होंगे। शरीरके लिए वे कुछ-न-कुछ पायेंगे, लेकिन सेवकके नाते ही। स्वार्थके लिए किया गया धंधा धर्म नहीं होता। हमने तो व्यापारको धर्म ही बनाया है। अगर लोहा, अभ्रक

आदिके कारखाने सरकारने अपने हाथमें लिये तो आज वे जिनके हाथोंमें हैं, वे अपनी अक्ल उसमें दें। वे पूछेंगे कि 'इसमें हमें क्या नफा मिलेगा?' तो हम उनसे कहेंगे—'आपके द्वारा धर्मका आचरण होगा, यही नफा है।' अगर वे कहेंगे कि 'हमें यह नफा नहीं चाहिए, करोड़ों रुपये चाहिए', तो ऐसा कहनेवाला धार्मिक नहीं, अधार्मिक कहा जायगा।

जमीन गाँवकी मालकियतकी हो और जो काश्त करना चाहता हो, उसको वह दी जाय, छोटे-छोटे धंधे चलें और जो बड़े धंधे हैं, उनपर देशकी मालकियत हो—इसीको हम धर्म-व्यवस्था मानते हैं। आजतकके अध्ययनसे मुझे लगता है कि आज समाजमें जो कुछ चल रहा है, वह अधर्म है।

गीता कहती है कि 'तेरा काम है अपना कर्तव्य करना। फलकी आशा मत रखना।'

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥'

अपना कर्तव्य करनेका आनंद लो, वही आपके हाथमें है। यह करोगे तो आपसे धर्मका आचरण हुआ ऐसा माना जायगा। फल भगवान्‌को अर्पण करना याने फलत्याग करना ही धर्म है। जिन्होंने फल भगवान्‌को अर्पण करना छोड़ा, उन्होंने धर्म भी छोड़ा। समाजके लिए यह खतरेकी बात होगी।

११-४-'५३   —डोमचांच (हजारीबाग)

: ५४ :

मैं सब पार्टीवालोंसे कहता हूँ कि एक साथ भूदानके काममें जुट जाइये। सोशलिस्टोंसे कहता हूँ कि 'अपने-अपने अलग विचार रखो, पर गरीबोंकी भलाईके काममें कांग्रेसवालोंके साथ कंधेसे कंधा लगाकर काम करो।' कांग्रेसवालोंसे कहता हूँ कि 'दूसरे पक्षोंको उदारतासे अपने साथ लाओ। हमने कितना किया और दूसरेने कितना किया, यह न सोचो

हवा तैयार होती है तो काम हो जाता है। किसने कितना किया, कौन जानता है।' गीतामें भगवान्ने कहा है:

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।'

—'मैं तो सब कुछ कर सकता हूँ, परन्तु अर्जुन, तू निमित्त बन।' ...... इस तरह यशका विभाजन नहीं हो सकता, हवासे ही सारा काम होता है। यह कोई नहीं कह सकता कि उसके कारण इतनी एकड़ जमीन मिली। मैं भी ऐसा नहीं कह सकता कि मेरे कारण जमीन मिली। यह काम तो परमेश्वरकी इच्छासे होता है। जब हवा बन जाती है तो परमेश्वर-की इच्छासे कोई निमित्त बन जाता है। जैसा जिसका परिचय है वैसा उसको यश मिलता है या नहीं भी मिलता। झाँसीकी रानीको यश नहीं मिला और शिवाजी महाराजको मिला, तो झाँसीकी रानीका गौरव न करना और शिवाजी महाराजका करना—यह गलत होगा। इस काममें जो यश मिलेगा, वह सबका होगा।

१२-४-'५३ —कोडरमा (हजारीबाग)

: ५५ :

यहाँपर कांग्रेसकी बड़ी दुर्दशा है। उसमें दो दल हैं। सारे दलदलमें फँसे हैं, जिससे उनकी ताकत कम होती है। एक पक्षके पास १० सेर ताकत हो और दूसरे पक्षके पास ८ सेर, तो लड़ाईमें १० सेरवाला जीतेगा; परन्तु देशको तो १०–८=२ याने २ सेरका ही लाभ होगा। याने उसमें जीत किसीकी भी हो, देशने तो हार खायी—यही कहना होगा। अगर दोनों साथ मिलकर काम करें तो १०+८=१८ सेर ताकतका देशको लाभ होगा। लेकिन उसके लिए आपसी भेद मिटाने होंगे। उसके लिए पुराना सब कुछ भूलनेकी शक्ति चाहिए। पुराना कैसे भूला जाय—यह भी एक बड़ी शक्ति है। ईशावास्य-उपनिषद्में कहा गया है:

'विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।'

साधकके लिए दो साधन हैं : (१) विद्या याने जानना और (२) अविद्या याने भूल जाना। जो बातें भूलने लायक होती हैं, उन्हें भूलनेकी शक्ति होनी चाहिए। हम पूर्वजन्मकी बात करते हैं, तो कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि 'आप तो पूर्वजन्मकी बात करते हैं, परन्तु पूर्वजन्मकी याद क्यों नहीं आती ?' तो मैं जवाब देता हूँ कि 'अगर पूर्वजन्मका सारा याद रहता तो अपनी आजकी यह मीटिंग कैसे बनती ? तब तो मैं आपको लात मारता, यह कहकर कि 'उस जन्ममें तुम कुत्ते थे और मैं गधा, तुमने मुझे काटा था और मुझे तुम्हें लात मारनी थी, पर वह रह गयी तो अब मारता हूँ।' अगर मैं ऐसा करता तो क्या यह मीटिंग हो पाती ? परन्तु मैं भूल गया कि मैं गधा था और तुम भूल गये कि तुम कुत्ते थे, इसलिए यह मीटिंग चल रही है। यह परमेश्वरकी कृपा है कि जहाँ मृत्युकी छाया आती है वहाँ भूलनेकी शक्ति भी आती है। नये जन्ममें मनुष्य सारा भूल जाता है और सिर्फ वही याद करता है जो याद करने लायक है। यह परमेश्वरकी कीमिया है और उसीके कारण हम जिन्दगी जीते हैं। इसी तरह हमें पुराने झगड़े, द्वेष आदि सब भुलाकर इस काममें लग जाना चाहिए।

१२-४-'५३ —कोडरमा (हजारीबाग)

: ५६ :

आजतक हजारों गरीबोंने दान दिया है, तो अब उसका असर श्रीमानोंपर भी हो रहा है। अब श्रीमान् लोग आगे आयेंगे और देखते-देखते इस आन्दोलनको अपना आन्दोलन मानकर चलायेंगे, ऐसे चिह्न दिखाई दे रहे हैं। जिनकी नजर संकुचित है, उन्हें लगता है कि लोग कंजूसीसे दान देते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टिसे देखें तो भव्य दृष्टि आती है। आज जो कंजूस दीख रहे हैं, वे ही आगे चलकर हमारा काम उठायेंगे। ऋषिने प्रार्थना की है :

'अदित्सन्तं चित् आघृणे ।
पूषन् दानाय चोदय ।
पणेश चित विम्रदा मनः ।'

—'तपा-तपाकर शुद्ध करनेवाले देव ! जो आज देना नहीं चाहता, उसका मन भी देनेकी ओर प्रेरित करो। कृपणका मन भी मृदु बनाओ। उसके मनको दानकी प्रेरणा दो।' ऋषिकी यह प्रार्थना निकम्मी नहीं है, कामकी है, सफल है। आज वह प्रार्थना फल रही है। आज लोगोंके हृदयकी गाँठें खुल रही हैं। परिस्थिति उन्हें दानकी प्रेरणा दे रही है। परिस्थितिका मतलब है कि गरीब हजारोंकी तादादमें दान दे रहे हैं, जिससे श्रीमानोंको भी दानकी प्रेरणा मिल रही है। गरीबोंका दान पुण्य असर किये वगैर रह नहीं सकता। इसलिए जब कोई हमें सुनाता है कि कोई श्रीमान् दान नहीं दे रहा है, तो कुछ लोगोंको गुस्सा आ जाता है। परन्तु गुस्सा नहीं करना चाहिए। विश्वास रखो कि, जो आज नहीं देता, वह इसीलिए नहीं देता कि वह कल देनेवाला है।

१५-४-'५३ —अकबरपुर (गया)

: ५७ :

कम्युनिस्ट लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप गरीबोंसे दान क्यों लेते हैं?' गरीबोंसे दान लेना तो अहिंसाकी एक प्रक्रिया है। अगर आप अहिंसाको समझते हैं तब ही यह आपकी समझमें आ सकता है। हम श्रीमानोंसे दान लेते हैं, परन्तु उन्हें दान देनेको प्रवृत्त करनेके लिए नैतिक दबावकी जरूरत होती है। हम हिंसाको नहीं मानते। अगर अहिंसक या नैतिक दबावको भी नहीं मानेंगे तो हम निष्क्रिय बन जायँगे—हिंसा या अहिंसा कुछ भी नहीं करेंगे। नतिक दबाव धार्मिक ही है। उपनिषदोंमें कहा गया है:

'श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्,
संविदा देयम्, श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्।'

—'लज्जासे दो, भयसे दो, विचारसे दो, श्रद्धासे दो, लेकिन अश्रद्धासे मत दो।'

शर्म या लज्जासे भी दान दिया जाता है, तो वह भी अच्छा ही है। छोटा बच्चा नंगा घूमता है, उसे शर्म नहीं मालूम पड़ती। परन्तु उसे निजका ज्ञान हुआ तो शर्म, लज्जा आती है और वह कपड़ा पहन लेता है।

जिसने शर्म या लोकलज्जासे दान दिया, वह विचारको समझता है, इसीलिए देता है। कोई लज्जासे दान देता है तो वह ज्ञानसे देता है। हजारों गरीब लोग दान देते हैं, उसका असर श्रीमानोंपर भी होता है, उनमें लज्जा पैदा होती है और वे भी दान देने लगते हैं। इसलिए लज्जासे देते हैं तो कोई हर्ज नहीं। इस तरहकी लज्जा, पापभीरुता, धर्मभीरुता होनी ही चाहिए—'ह्रिया देयम् ।'

कोई भयसे दान देता है तो भी कोई हर्ज नहीं। भयका मतलब यह नहीं कि 'दान दो, नहीं तो कत्ल करेंगे'—ऐसा भय दिखाकर दान लिया जाय। वह गलत ही है। परन्तु अगर हम किसीसे कहें कि 'तुम्हारे बिछौनेपर साँप है, इसलिए बिछौना छोड़ो', तो ऐसा कहनेमें जो भय है, वह ठीक ही है। जो भय है, उसे हमने दिखाया तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि सच्चा डर जो है उसे जानना ही चाहिए । मनुष्यको जिन चीजोंसे डरना चाहिए, उन चीजोंसे डरना धर्म है और जिन चीजोंसे नहीं डरना चाहिए, उन चीजोंसे न डरना धर्म है। भय भी अच्छी बात है। भयके कारण हम बुरा काम न करें, तो ठीक ही है। 'झूठ बोलोगे तो नुकसान होगा, हिंसा करोगे तो दुनियाका विनाश होगा'—यह कहना डर नहीं, यह तो एक विचार है । बुरा काम करनेसे बुरा फल प्राप्त होता है, इसलिए 'बुरा काम मत करो', यह हम समझते हैं तो वह डर और भय धार्मिक ही है। समाजको इस तरह समझाना कि 'जमानेको न पहचानोगे और उदार दिलसे भूमिदान नहीं दोगे तो आपके लिए खतरा है', डराना नहीं, बल्कि विचार समझाना ही है। 'बुराईका फल बुरा होता है और भलाईका फल भला', यह कहना डर दिखाना नहीं है। यह 'कर्मविपाक' है—कर्मका परिणाम क्या होता है, यही बताया गया है। इसीलिए हम गरीबोंसे दान लेते हैं, ताकि उसका नैतिक दबाव श्रीमानोंपर पड़े।

अपनी संपत्ति देखकर अपनी 'श्री' के अनुकूल दान देना चाहिए, नहीं तो 'इतिश्री' हो जायगी। कान्ति खत्म हो जायगी, तेजोहीन बनोगे,

चेहरेकी प्रभा नष्ट हो जायगी। इसीलिए जो दान देना है, वह ऐसा होना चाहिए कि जिससे चेहरेकी कांति वढ़े। याने 'श्रिया देयम्।' फिर दूसरी वात है—'ह्रिया देयम्'—लज्जासे दो। अपनी हैसियतसे कम नहीं देना चाहिए। इज्जतके लिए मनुष्य सब कुछ त्याग कर सकता है। इसलिए ऐसा दान देना चाहिए जिससे इज्ज्जत वढ़े। अगर कोई दस हजार एकड़वाला सौ एकड़ देता है तो उसमें न लज्जा है, न श्री। इसलिए कम दान देने से देनेवाले और लेनेवाले—दोनोंकी इज्जत घटती है। जो शोभादायक हो, वही करना चाहिए। जो कुछ देना हो, वह श्रद्धासे देना चाहिए, अश्रद्धासे कभी न देना चाहिए। और जो देना है, वह ज्ञानपूर्वक देना चाहिए।

१६-४-'५३ —नवादा (गया)

१४-१०-'५२ —बरौली (सारन)

: ५८ :

कुछ लोग कहते हैं कि 'इस कलियुगमें आपको दान कौन देगा ?' लेकिन द्वापर और त्रेतायुगमें भी रावण और कंस हुए और इस कलियुगमें भी गांधीजी, रामकृष्ण परमहंस जैसे महापुरुष हो गये। इसलिए युगको वात करना गलत है। हर युगमें सद्भावना होती है। युग वनानेवाले तो मनुष्य ही होते हैं। हमें हजारों लोग भूमिदान दे रहे हैं। इसका मतलव है कि कलियुगमें भी सद्भावना होती है। शास्त्रोंने तो कहा है कि कलियुगमें धर्म आसान है:

'कलौ दानं च नाम च।'

—'कलियुगमें दान दो और परमेश्वरका नाम लो तो परमेश्वरकी प्राप्ति हो जाती है।' यह कितना आसान है ! पुराने युगोंमें तो कितनी तपस्या करनी पड़ती थी। जंतर-मंतर, जप-तप, यज्ञ-याग—सब करना पड़ता था, तब भगवान् दर्शन देते थे। भगवान्‌का दर्शन इतना दुर्लभ था। लेकिन इस युगमें तो दान और नाम—दो ही वातें करनी होती हैं। इस वचनपर

विश्वास रखकर हमने माँगना शुरू किया और हमें लाखों एकड़ जमीन मिली।

२०-४-'५३ —गुल्ली (गया)

: ५९ :

आज हजारों लोग दान दे रहे हैं, यह युगके बदलनेकी निशानी है। अब अच्छाईकी हवा बहने लगी है। स्वराज्य हासिल होनेके बाद हिंदू-मुसलमानोंके कितने झगड़े चले, लेकिन ४-६ महीनोंमें वे खत्म हो गये। बुरी हवा फैली थी, पर खत्म हो गयी। अच्छाई और बुराईकी टक्कर हमेशा होती है, पर आखिर विजय तो अच्छाईकी ही होती है। शास्त्र कहते हैं कि **'सत्यमेव जयते नानृतम्'**—सत्यकी ही विजय होती है, सिर्फ सत्ययुगमें ही नहीं, बल्कि हर युगमें। हर युगमें कशमकश होती है, लड़ाई-झगड़े चलते हैं, परन्तु आखिर विजय सत्यकी ही होती है। हिंदू-मुसलमान सब भूमिदान दे रहे हैं। बच्चा-बच्चा बोल रहा है कि 'भूमि-दान दो', 'धन और धरती बँटकर रहेगी।' सत्यका, परोपकारका, प्रेमका विचार बलवान् है और लूटनेका, हिंसाका, झगड़ेका विचार कमजोर है। इसलिए आखिर सत्य और प्रेमके विचारकी ही विजय होनेवाली है।

२०-४-'५३ —गुल्ली (गया)

: ६० :

आज जो लोग अपने बच्चोंके लिए जायदाद (इस्टेट) छोड़ते हैं, उनके बच्चे आलस्य, व्यसन और बुराईमें सब बर्बाद कर देते हैं। हम तीन भाई हैं। हमारे पिताजीने हमें अच्छी तालीम दी, परन्तु कोई इस्टेट नहीं दी। इसलिए तीनों भाई पराक्रमी और सुखी हुए। अगर पिताजी हमें बेवकूफ रखते और हमारे लिए पैसा रखते तो विद्या, चारित्र्य, अक्ल आदि गुणोंके बदलेमें हम पैसा लेते और नालायक बन जाते। इसलिए हम अपने पिताजीका उपकार मानते हैं कि उन्होंने हमें तालीम दी, पैसा नहीं दिया।

वह पिता अपने पुत्रका दुश्मन है जो पुत्रके लिए बनी-बनायी इस्टेट छोड़ जाता है।

'पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः ।'

—'पिता पुत्रको अच्छी तालीम दे तो उसे सद्गति मिलती है।' पुत्रको शिक्षण, मेहनत, उद्योग और नीति सिखानेके बदलेमें इस्टेट दोगे तो आपको परलोकमें और पुत्रको इस लोकमें दुर्गति प्राप्त होगी।

२३-४-'५३ —ओटनपुर (गया)

: ६१ :

अब गरीब जाग रहे हैं। हवामें बात फैल गयी है कि जमीन सबकी हो चुकी है। हवा, पानी और सूरजकी रोशनीके समान जमीन भी परमेश्वरकी देन है, इसलिए उसपर सबका समान अधिकार है। मैं चाहता हूँ कि श्रीमान्, जमींदार भी जाग जायँ और भूदानके कामको अपना काम मानकर उठा लें। वे फौरन यह काम करेंगे तो शोभादायक होगा। आखिर लाचारीसे देना ही पड़ेगा। उस दानम रुचि नहीं रहती। गीतामें लिखा है:

'अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम् ॥'

—'तामस-दानका लक्षण यह है कि दाता दान तो देता है, परन्तु दुःखके साथ देता है, मुँह टेढ़ा करके देता है, खुशीसे नहीं देता।' खुशीसे दिया जाय तो थोड़ा-सा देनेपर भी बहुत मिला, ऐसा माना जायगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि जमींदार समय रहते ही खुशीसे दान दें। प्रेमसे दान नहीं दोगे तो उसका परिणाम ठीक नहीं होगा। देना है तो ठीक मौकेपर देना चाहिए और प्रेमसे देना चाहिए। गीतामें लिखा है:

'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥'

तो क्या अब काल नहीं आया है? और जरा मेरे चेहरेकी तरफ देखो तो, क्या मैं पात्र नहीं हूँ? देश भी है, काल भी है और पात्र भी

मौजूद है। तो, ठीक समयपर दान दो तो अच्छा होगा। डॉक्टरको देरीसे वुलानेपर फीस भी देनी पड़ती है और रोगी भी चल बसता है। इसलिए डॉक्टरको वुलाना हो तो मौकेपर वुलाना चाहिए। ठीक मौकेपर ठीक काम करनेसे उत्तम परिणाम निकलता है।

२५-४-'५३ —हसुआ (गया)

: ६२ :

वड़े लोगोंके दिल अभीतक पूरे नहीं खुल पाये हैं। वे दान नहीं दे रहे ह। सोच रहे हैं कि लाचारीसे देना पड़ेगा, तव देंगे।

'धर्मस्य त्वरिता गतिः।'

--'धर्म तव सफल होता है, जव उसका तुरन्त आचरण किया जाता है।' किसी वीमारको वचाना है तो समय रहते ही डॉक्टरको वुलाना चाहिए, तभी वह वच सकता है। ठीक मौकेपर वोओ तो अच्छी फसल उगती है। आज अपने देशके लिए यह मौका आया है कि प्रेम और शान्तिसे नये समाजका निर्माण करें। अगर हमने यह मौका खो दिया तो समाज-रचना तो वदलेगी ही, परन्तु उथल-पुथल होगी--वुरे तरीकेसे वदलेगी, जिससे लोग दुखी होंगे। उससे कोई लाभ नहीं होगा। परन्तु समाज-रचनामें शान्तिसे परिवर्तन होता है तो स्थिर लाभ होता है। चीन और रूसमें क्या हुआ, यह सव देख लीजिये, समझ लीजिये। भारतका अपना अस्तित्व है, सभ्यता है, तरीका है, जीवनका प्रकार है—ऐसा हम अभिमान रखते हैं। तो उस सभ्यताके अनुकूल समाज-परिवर्तनका कोई तरीका हमें ढूंढ़ना चाहिए। भूदान-यज्ञ एक ऐसा ही तरीका हमें मिला है। आखिर हम आपकी ज़मीनका छठा हिस्सा ही तो माँग रहे हैं।

'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः।'

—'सव कुछ खोनेका मौका आया है तो आधा छोड़ना चाहिए।' परन्तु हमने आधे हिस्सेकी नहीं, सिर्फ छठे हिस्सेकी माँग की है। इसीलिए जमानेको पहचानकर छठा हिस्सा दानमें दीजिये।

२-५-'५३ —रसलपुर (गया)

: ६३ :

उपनिषदोंमें ऋषि कहता है, 'तत्त्वमसि'—तू ब्रह्म है। आकारमें इससे छोटा और अर्थमें इससे बड़ा वाक्य मैंने दुनियाकी किसी भी भाषामें नहीं देखा। इतना व्यापक अर्थ इस वाक्यमें है कि सारा ब्रह्मांड भी उसमें नहीं समा पाता। हम तो दुर्बल हैं, पामर हैं, परन्तु ऋषि हमें समझाता है कि 'तू शव नहीं, शिव है। देह ऊपरका छिलका है। उसे निकालकर फेंक दो तो अंदरका अमृत दीख पड़ेगा।' कुछ फलोंके ऊपरी छिलके आकर्षक होते हैं और कुछके नहीं होते। ऊपरके छिलके आकर्षक हों या न हों, ऋषि कहता है कि अंदरकी आत्मा अमृत है, मधुर है। किसीका बाहरका आकार, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि खराब हो तो भी यदि उसकी आत्मा जागरित हो जाय, तो ऊपरका छिलका फेंककर, सहज ही वह अमृतमय बन सकता है।

'तत्त्वमसि' वाक्यने मुझे बल दिया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं कमजोर हूँ। अपनेसे कमजोर आदमी मैंने अभीतक दूसरा नहीं देखा। बहुत लोगोंमें बहुत-सी शक्तियाँ देखता हूँ। उन सबकी मुझमें कमी है। परन्तु मुझमें एक शक्ति है और वह शक्ति मेरी नहीं है, वह हर हृदयमें है और वह आत्माकी शक्ति है। उस शक्तिने मुझे जगाया है। उसके परिणामस्वरूप छोटे-छोटे लोग भी बड़े संकल्प करते हैं। हम संकल्प पूरा करेंगे तो देखेंगे कि ये ऊपरके छिलके फेंक दिये जायँगे और अन्दरका स्वरूप प्रकट होगा। जब मनुष्य अपनेको छोटा मानता है तब उसका सारा विचार सीमित बन जाता है, उसका मन छोटा बनता है। परन्तु जब वह अपनेको विशाल मानता है तब विशाल बन जाता है। उपनिषदोंमें ऋषि कहता है कि तू ब्रह्म है। तू इंद्रिय, शरीर, मन, बुद्धि नहीं है। तू ब्रह्म है, शुद्ध, पावन, मंगल, ज्ञानमय है।' जहाँ ऋषि ऐसा कहता है, वहाँ मैं फौरन वैसा हो जाता हूँ।

२९-३-'५३ —बेरमो (हजारीबाग)

३-५-'५३ —गया

: ६४ :

ठंढ, गर्मी और बारिशको सहन करनेवाला ही सच्चा भक्त होता है। भगवान्के भक्त हर हालतमें काम करते हैं। जो कहता है कि मैं ठंढमें ठिठुर रहा हूँ, इसलिए भक्ति नहीं कर सकता, गर्मीकी तकलीफ हो रही है, इसलिए भक्ति नहीं कर सकता, वह भक्त नहीं है। मॅजिनीने कहा है कि 'ये लोग क्रान्तिका नाम लेते हैं, परन्तु कहते हैं कि गर्मीमें काम नहीं करेंगे, क्योंकि तकलीफ होती है। फिर कहते हैं कि इस साल बारिश ज्यादा हुई है, इसलिए बारिशमें काम नहीं करेंगे। फिर उसके बाद कहते हैं कि अब ठंड ज्यादा है, इसलिए काम नहीं करेंगे, क्योंकि ठंढमें दिमाग ठंडा पड़ जाता है। लेकिन जो काम करनेवाले होते हैं, उनको हर ऋतु अनुकूल होती है, उनके लिए बाधक ऋतु कोई नहीं है। सामवेदमें ऐसा ही वर्णन है:

'वसंत इन्नु रंत्यो। ग्रीष्म इन्नु रंत्यः।
वर्षाण्यनु शरदो हेमंतः शिशिर इन्नुरंत्यः॥'

—'सारी ऋतुएँ अनुकूल हैं', ऐसा कहनेवाले को भक्त समझना चाहिए। मेरे लिए कोई ऋतु प्रतिकूल नहीं हो सकती। मुझे ऋतुके अनुकूल बनना होगा। . . दिलमें आग हो तो हर ऋतुमें काम होगा।

३-५-'५३　　　　　　　　　　　　　　　　　　—गया

: ६५ :

विचार भी एक शक्ति है। हम तो समझते हैं कि विचार-शक्तिकी बराबरी करनेवाली दुनियामें दूसरी कोई शक्ति नहीं है। आज मुझसे एक सवाल पूछा गया कि 'इधर तो आप विचार-प्रचार करते चले जा रहे हैं, सद्-विचारका प्रचार करते चले जा रहे हैं, और उधर अणुबमकी तैयारी है और उसके भी आगे उद्जन बम आनेवाला है, तो आपका यह विचार और उपदेश उसके सामने कहाँतक टिक सकता है?' जब ऐसा सवाल उठाया जाता है तब तो हम सोचते हैं कि अणुबममें जो शक्ति आयी है वह विचारमें ही आयी है। वह सद्विचार हो या न हो, परन्तु एक

विचार जरूर है। विचारसे ही मनुष्य प्रेरित हुआ है और उसीसे दुनियाको वशमें करनेके लिए उसने सारा शस्त्रास्त्र-संभार इकट्ठा किया है। परन्तु वे सारे अस्त्र-शस्त्र स्वयमेव, खुद उठकर, कोई काम नहीं कर सकते। उनको बनानेवालेने भी विचारका ही आश्रय लिया था। उनकी कल्पना करनेवालेके मनमें भी एक विचार आया था और उनका उपयोग करने-वाला भी एक विचारवान् मनुष्य ही होता है। इस तरह उसके आदि, अंत और मध्य—तीनोंमें विचार ही विचार है, ऐसा दीखता है। उसका बाह्य रूप अणुबम भी हो सकता है और दान-पत्र भी। दान-पत्र एक कागज नहीं है और न अणु-बम ही दुनियाका एक मसाला है। दोनोंके पीछे विचारकी प्रेरणा है।

मुझे तो अणु-बमकी शक्ति ही बता रही है कि विचारमें क्या ताकत होती है। जो सद्विचार होता है वह टिकता है और असद्विचार एक क्षणके लिए दर्शन तो देता है, लेकिन दूसरे ही क्षण उसका लय हो जाता है। एक शाश्वत विचार है और दूसरा अशाश्वत। कौन-सा विचार-शाश्वत है और कौन-सा अशाश्वत, इसका निर्णय और सत्य-असत्य विचारका निर्णय मनुष्य हमेशा ठीक नहीं कर पाता। इसीलिए कोई भी विचार वह झटसे ग्रहण कर लेता है। लेकिन जहाँ उसने असद्-विचार ग्रहण किया वहाँ वह उसके पीछे नाना कर्म करता है। वह नाना यंत्र, तंत्र, मंत्र, अनेकविध योजना-कल्पना खड़ी कर लेता है। परन्तु जब वह पहचान लेता है कि यह विचार गलत था, तब वह सारा तंत्र-मंत्र, सारी योजना-कल्पना, एक क्षणमें खत्म हो जाती है। मनुष्य उसे सहन नहीं कर सकता, सारी रचनाको तोड़-फोड़ डालता है। तोड़नेमें उसे जरा भी देर नहीं लगती।

जहाँ वह सद्विचार जान जाता है, वहाँ असद्विचार तोड़ देनेमें उसे देर नहीं लगती। जहाँ ठीक दर्शन नहीं होता—यह ज्ञान नहीं होता कि सद्विचार क्या है, वहाँ मनष्य-समाज गलत रास्तेपर जा सकता है। परन्तु हम तो उसे प्रयोग कहते हैं। जैसे ज्ञान-विज्ञानके प्रयोग होते हैं, वैसे ही समाज-शास्त्रके भी प्रयोग अनादिकालसे होते आ रहे हैं।

एक विचारके असद्विचार साबित हो जानेपर मानव उसको छोड़ हमेशा नया विचार ग्रहण करता गया। समाज-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र, राज्य-शास्त्र—सबमें यही हुआ है। जीवनके अंग-उपांगोंमें ऐसा ही होता है। एक नया विचार आता है—पहलेके विचारको तोड़कर दूसरा विचार आता है, लेकिन जब उसमें भी दोष दीखने लगता है तब उसके संशोधनके लिए तीसरा विचार आता है, जो अति परिशुद्ध होता और पुराने विचारको तोड़ता है। तब उसका राज चलता है। आजतक दुनियामें विचारोंके ही राज चले हैं। एक-एक विचार आता गया और टूटता गया, परन्तु सत्ता चली विचारकी ही। जहाँतक मनुष्यका ताल्लुक है, विचारकी ही प्रेरणा उसे मिली है और दुनियामें जो सारा तंत्र-मंत्र चला, वह उसीके कारण। दुनियामें राज्य विचारका ही चला।

भगवान्‌ने गीतामें एक रूपक बताया है—

'ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चाऽऽदिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥'

—रूपक पेड़का है। एक ऐसा पेड़ है जिसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे फैली हुई हैं। यह पेड़ मनुष्याकृतिका रूपक है। मनुष्यका मस्तिष्क ऊपर है, इसलिए वह ऊर्ध्वमूल है। वहींसे सारे विचार प्रकट होते हैं। और 'हस्तपादाः' ये जो शाखाएँ हैं जिनसे सारा काम होता है, वे नीचे फैली हुई हैं। इसलिए मनुष्यका वर्णन 'ऊर्ध्व-मूलः अधः-शाखः' किया गया है। वह पेड़ अव्यक्त है, याने टिकता है और अव्यय है, याने टिकता नहीं है। वह ऐसा अजीब वृक्ष है जो टिकता भी है और नहीं भी टिकता। इसकी जड़ ऊपर है—इसका मतलब यह है कि विचारका मूल ऊपर है। विचारके अनुसार अनेक शाखाएँ पल्लवित और पुष्पित होती हैं। वह पेड़ टिकता भी है और नहीं भी टिकता—

इसका मतलब यह है कि जब एक विचार सही मालूम होता है तो उसके अनुसार मनुष्य अपने जीवनकी रचना आरंभ करता है। तब जिधर देखो उधर वही विचार चलता है, उसीके अनुसार राज्य निर्माण होता और जीवन बनता है। मकान, रास्ते आदि सारा सरंजाम उस विचारके अनुसार, उस विचारके पोषणके लिए मनुष्य बनाता है। उसीको सिविलीजेशन, संस्कृति या सभ्यता कहते हैं। यह सारी विचारकी कीमिया है। परन्तु जहाँ उस विचारमें असद्विचारका अंश मालूम होता है, वहाँ वह सारा ढाँचा बदलता है और उस दृष्टिसे यह वृक्ष टिकता नहीं है। जहाँ उस विचारमें कसर मालूम होती है, वहाँ वह विचार खत्म हो जाता और दूसरा आता है। परन्तु यह वृक्ष टिकता है। याने मनुष्य सारा कार्य उस विचारके अनुसार चलाता है। जहानमें जो विचार सही मालूम होता है उसके अनुसार सारा जीवन चलता है। विचार बदलता जाता है, परन्तु जीवन चलता है विचारके ही अनुसार। याने विचार-शासन स्थिर है। किसी एक विचारका शासन स्थिर नहीं हो सकता, क्योंकि विचारके झगड़े नित्य-निरंतर चलते रहते हैं। समाज-शास्त्रमें इन झगड़ोंको 'संघर्ष' कहा जाता है, परन्तु अध्यात्मशास्त्रमें इसे विचार-मंथन, विचार-शोधन या संशोधन कहते हैं। नाम कुछ भी दें, उसका मूल स्वरूप तो विचारमें ही होता है।

इसलिए विचारक और चिंतक, जिन्होंने दुनियाकी असलियतको पहचान लिया है, उसके असली मूल स्रोतको पहचान लिया है, विचारको हाथसे नहीं जाने देते, उसका निरंतर प्रचार करते रहते हैं। एक बार समझानेसे किसीकी समझमें विचार नहीं आता तो सब्र रखते हैं और दुबारा समझाते हैं। दूसरी युक्तियोंसे काम लेते हैं। जैसे शिक्षक विद्यार्थीको समझाते समय एक पद्धतिसे उसकी समझमें न आये तो 'विचार समझानेका मौका मिला है'—यह मानकर उत्साहित होता और बार-बार समझाता है, उसी तरह समाजको भी हम निरन्तर विचार समझाते हैं। जब उसकी समझमें यह विचार आ जायगा तब सारा समाज खुद-ब-खुद अपना ढाँचा बदलेगा। एक बार विचार समझमें आ जाय तो जिन हाथोंने ये सारे शस्त्रास्त्र निर्माण किये हैं, वे ही हाथ उन्हें खत्म भी कर देंगे—जिन हाथोंने यह सारा

मायाका संसार निर्माण किया है, वे ही हाथ उसका संहार कर देंगे। इस-लिए विचारकी सत्ता चलती है। जो विचारमें श्रद्धा रखते हैं, वे जानते हैं कि यह सारा मृग-जल है। सूर्यकी किरणोंसे मृग-जल लहरें मारता है, लेकिन चन्द्रमाका प्रकाश फैलते ही मालूम हो जाता है कि यह सारा मृग-जल था।

मैं अपनी आँखोंके सामने देख रहा हूँ और लोग मुझ सुना रहे हैं कि तुम्हारी तूतीकी आवाज कौन सुननेवाला है, जब कि दुनिया चारों ओर 'शस्त्र बढ़ाओ' कह रही है—सब कहते हैं कि देशकी रक्षाके लिए शस्त्र बढ़ाना चाहिए और हरएक देश अपनी आमदनीका बहुत-सा हिस्सा राष्ट्रसंरक्षणके नामपर पशुशक्तिमें खर्च कर रहा है, तब आपका क्या चलेगा ? फिर भी हम कहते हैं कि आपके पास चाहे जितने शस्त्र हों, पर हम भी अनन्त शस्त्रधारी हैं। आपके पास तो इने-गिने शस्त्र हैं, परन्तु हमारे पास अनन्त शस्त्र हैं। विचारके जो अनन्त पहलू हैं, उनका पता ही नहीं चलता। परन्तु जहाँ विचाररूपी सूर्यनारायण अपने अनन्त पहलुओंसे—किरणोंसे—प्रकाशित होता है, वहाँ अन्धकार टिक नहीं सकता। इसलिए हम श्रद्धासे दो सालसे वही राम-नाम लेते चले जा रहे हैं। मुझे विश्वास था कि विचार-बीज बोया जा रहा है, उसका मज-बूत वृक्ष होगा। मैं यह देख रहा था और मेरी आपसे प्रार्थना है कि आपकी विचारकी श्रद्धा कभी ढीली नहीं होनी चाहिए। वह हमेशा मजबूत रहनी चाहिए।

२-५-'५३

—गया

: ६६ :

हमें दुःख इसलिए मिला है कि दूसरोंके दुःखके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति पैदा हो सके—करुणा निर्माण हो सके। यह परमेश्वरकी कृपा है कि वह हरएकको दुःख देता है। परमेश्वरने दो आँखें इसीलिए दी हैं कि एक आँखसे गरीबोंके लिए रोयें और दूसरीसे अपने दुःखके लिए। तो फिर दूसरे भी एक आँखसे हमारे लिए रोयेंगे। इससे रोना ही खत्म

हो जायगा और सब हँसने लगेंगे। गीता कहती है कि एक दूसरेपर प्यार करते हुए चलते चलो :

'देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥'

हम श्रद्धासे गरीबोंकी मदद करें। शर्तीली मदद नहीं, बल्कि फलकी आशा छोड़कर काम करें तो फल मिलेगा। फलकी आशा रखकर काम करनेसे छोटा ही फल मिलता है, परन्तु फलकी आशा छोड़कर काम करेंगे तो अनंत फल मिलेगा।

४-५-'५३ —चेरकी (गया)

: ६७ :

मने सुना है कि कुछ कार्यकर्ता जमीन इकट्ठा करके रख लेते हैं और जब उनका नेता आता है तो उसे देते हैं, तबतक राह देखते रहते हैं जिससे कि उस नेताको यश मिले। यह स्वाभाविक है। परंतु धर्मकार्यमें तीव्रता, त्वरितता होनी चाहिए। इसलिए जो भी पहले आये, उसे दान दे देना चाहिए। शास्त्रोंने कहा है :

'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।'

—'मृत्युने अपनी चोटी पकड़ ली है, यह याद रखते हुए धर्मकार्य करो।' मैं अभी मर रहा हूँ, यह याद रखते हुए धर्मका आचरण करना चाहिए। भूदान-यज्ञ धर्मकार्य है, इसलिए हमारा नेता पंद्रह दिन बाद आनेवाला है तो उसको देनेके लिए जमीन रखना धर्मकी दृष्टिसे ठीक नहीं है।

१०-५-'५३ —कोठी (गया)

: ६८ :

हमारे किसान अपढ़ हैं, किन्तु अशिक्षित अथवा मूर्ख नहीं हैं। देहातके लोग समझदार होते हैं। हजारों बरसोंका अनुभव उनके साथ है। हजारों बरसोंसे वे खेती करते आये हैं। पुराने औजारोंसे अपनी जीविका-संपादन करते हैं।

उनका जीविका-संपादन करना एक प्रकारकी लड़ाई ही है। वे कुदरतके साथ लड़ते हैं। वे बहादुर, अनुभवी और समझदार हैं; इसीलिए समाजकी हालतको समझते हैं। उन्हें अगर थोड़ा-सा समझा दिया जाय तो 'भूमिदान' के लिए राजी हो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि गाँवके लोग भोले होते हैं, इसलिए भू-दान देते हैं। पर हम इससे उल्टा समझते हैं। हम मानते हैं कि गाँवके लोग लंबा सोचनेवाले हैं—दूरदर्शी हैं, इसीलिए दान देते हैं।

'दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वम्। परं पश्यत माऽपरम् ।'

—'दूरका देखो, नजदीकका नहीं।' हमारा किसान न सिर्फ दस-बीस सालका देखता है, बल्कि परलोकका भी देखता है। इतनी दूरदृष्टि उसमें है। यह भोलापन नहीं है। अपढ़ होते हुए भी हजारों बरसोंका अनुभव उसके खूनमें बहता है, इसीलिए वह दान देता है।

१६-५-'५३ —किशनपुर (पलामू)

: ६९ :

हमें यह दिखाई दे रहा है कि लोग भूमिदान देनेके लिए उत्सुक हैं। हमारे कार्यकर्ता जहाँ कहीं पहुँचते हैं, विमुख नहीं लौटते। इसका कारण यह है कि जो देना है वह जरूरी है, ऐसा लोग मानते हैं। भूमिका जो बँटवारा अबतक हुआ है, वह गलत है, उससे सारे समाजकी संपत्तिका मूल स्रोत सूख रहा है और उससे हिंदुस्तान खतरेमें है—यह हर व्यक्ति समझता है। इसे समझानेके लिए कोई बड़ा इतिहास नहीं बताना पड़ता। सारे लोग देनेके लिए राजी हैं। और हमने माँगा भी कितना ? 'धम्म-पद'में कहा गया है :

'यथापि भमरो, पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयम् ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनिचरे ॥'

—'जिस तरह भ्रमर फूलोंको तकलीफ दिये बगैर उसका रस चूस लेता है उसी तरह भिक्षु गाँव-गाँव घूमे।' हमारी पद्धति भी वैसी ही है। हमने सिर्फ छठा हिस्सा ही तो माँगा है। साधारण गृहस्थको उसका कोई बोझ

नहीं महसूस होता। सब लोग आसानीसे समझ लेते हैं कि हमारे घरमें छठा भाई है, जो अव्यक्त है। उस छठेके लिए, दरिद्रनारायणके लिए, उसका हिस्सा देना चाहिए, यह तो हमारी प्राचीन परंपरा है। यह कोई बाहरसे लायी हुई चीज नहीं है। हमारे संतोंने सिखाया है कि खिलाकर खाना चाहिए, पिलाकर पीना चाहिए, और सुलाकर सोना चाहिए।

जैसे मधुमक्खी विना तकलीफ दिये पुष्पोंमेंसे रस लेती है, वैसे ही हम विना तकलीफ दिये श्रीमानोंसे जमीन लेना चाहते हैं। और अब तो विज्ञानने यह साबित कर दिया है कि मधुमक्खी पुष्पोंमेंसे रस लेकर फूलोंपर उपकार ही करती है। जैसे वह रस लेती है वैसे ही अपना रस देती भी है। वैसे ही हम धनिकोंसे छठा हिस्सा लेते हैं तो बदलेमें उन्हें बहुत इज्जत भी देते हैं।

१६-११-'५३ —शेरमारी बाजार (भागलपुर)

१६-५-'५३ —किशनपुर (पलामू)

: ७० :

भूदान-यज्ञ एक धर्मकार्य है और धर्मकार्यमें जो शरीक होना चाहते हैं उन्हें चित्तशुद्धिपूर्वक शरीक होना चाहिए। इस काममें किसी भी प्रकारके पक्षभेदकी गुंजाइश नहीं है। इस यज्ञके काममें कांग्रेसके बड़े-बड़े नेताओंकी सहानुभूति है और वे मदद देते हैं। प्रजासमाजवादी पक्षके बड़े नता इसमें लगातार जुटे हुए हैं और दूसरे भी अनेक लोगोंका सहयोग प्राप्त हुआ है और वह इसीलिए कि यह एक निर्विकार कार्य है। धर्मकार्य निर्विकार ही हो सकता है। शास्त्रोंमें कहा गया है:

'सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे।'

—'धर्मकार्य 'सर्वेषाम् अविरोधेन' होता है। धर्मकार्यका किसीके साथ विरोध नहीं होता।' हाँ, उसका अधर्मके साथ विरोध होता है, घोर विरोध होता है और वह मिट ही नहीं सकता। राम-रावण-युद्ध कैसा हुआ, इस प्रश्नका जवाब दिया गया है:

'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥'

—'राम-रावण-युद्ध राम-रावणके युद्धके समान ही हुआ।' इसका मतलब यह है कि राम-रावण-युद्ध उसीके जैसा हो सकता है, उसके लिए दूसरी मिसाल नहीं है। उस युद्धमें किसी भी तरहके बीच-बचावकी गुंजाइश नहीं। धर्मका अधर्मके साथ घोर विरोध होता है। ...... परन्तु बाकी सारे काम करने-वाले, जो अधर्मके साथ नहीं हैं, भूदान-यज्ञमें सहयोग दे सकते हैं।

२८-५-'५३ —रंका (पलामू)

: ७१ :

'शतहस्त समाहर। सहस्रहस्त संकिर।'

—'सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दो।' समाज-सेवाका यही न्याय है। जितना लेना है, उससे दसगुना देना है। इसी न्यायसे समाजको दो। उसका हिसाब मत पूछो। उससे आपको अनमोल चीज मिलेगी और वह है चित्तका समाधान। गजनीके मुहम्मद और बड़े-बड़े सम्राटोंको भी यह समाधान नहीं मिल पाया था।

परमेश्वर भी हमें इसी तरह देता है। वह बनिया नहीं है, जो हिसाब करके दे। परमेश्वरकी देनेकी तरकीब किसानसे पूछो। किसान कहेगा कि 'मैं एक बीज बोता हूँ तो परमेश्वर मुझे उसका सौगुना देता है।' समाज-रूपी परमेश्वर भी इसी तरह एकका सौ बनाता है। इसीलिए हमें भी इसी न्यायसे समाजको देना है। फिर हम भर-भरके पायेंगे।

५-६-'५३ —छिपादोहर (पलामू)

: ७२ :

अहिंसा आत्माकी शक्ति है। 'नायं हन्ति न हन्यते'—आत्मा न मारती है, न मारी जाती है। यही उसकी शक्ति है। हिंसा दैहिक शक्ति है। देह मारी जाती है। देहसे आत्माकी शक्ति बड़ी है, परन्तु हम देह-बुद्धि

से देखते हैं। जिस किसीकी ओर हम देखते हैं, उसे देह ही मानते हैं। इसलिए यदि देहको छोड़कर मनुष्यको देखेंगे, देहका आवरण छोड़कर अंदरकी वस्तुकी तरफ, जो देहके परे है, देखेंगे तो हमारा सारा व्यवहार—बोलने-चालने और सोचनेका ढंग—ही बदल जायगा। सारी दुनिया दूसरे ही रंगसे रँगी हुई दिखाई पड़ेगी। ऐसा जिसके साथ होगा, उस मनुष्यके संपर्कमें जो भी आयेगा, उसपर यही रंग चढ़ेगा। उसपर दूसरेका रंग नहीं चढ़ेगा। यह वात हमारे ध्यानमें आ जाय तो हम जो अहिंसामें विश्वास करते हैं, उसका सामूहिक प्रयोग करना चाहते हैं, उनकी मुख्य चिंता यह होगी कि अपने निजी जीवनमें अहिंसाको कहाँतक उतार सके हैं, उसकी उपासना कहाँतक और कितनी एकाग्रतासे करते हैं। अहिंसा-शक्तिको प्रकट करनेके लिए हमें अपना अंतःशोधन, अंतःशुद्धि और तपस्या करनी चाहिए।

८-६-'५३ —मारोमार (पलामू)

: ७३ :

गाँववालोंको अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहिए। यही सच्चा स्वराज्य है। गाँवमें ग्रामशक्ति है। उसीसे वहाँ पैसेका निर्माण होता है। गाँवकी जरूरतकी सारी चीजें गाँवमें पैदा हो सकती हैं। गाँवमें कपड़ा बन सकता है, मकान बन सकते हैं। जो थोड़ी-सी मदद वाहरसे चाहिए, वह भी मिल सकती है। इस तरह वहुत सारा काम गाँवकी अपनी शक्तिसे होना चाहिए। हम खाते हैं तो खुद अपने हाथोंसे खाते हैं; दूसरोंके हाथोंसे नहीं खा सकते। खाया हुआ अपनी ही पचनेन्द्रियोंसे पचाते हैं, हमारा भोजन दूसरा कोई नहीं पचा सकता। गाँवकी खुदकी ताकत जब बढ़ेगी, तभी गाँवमें स्वराज्य आयेगा। नहीं तो हर बातके लिए सरकारकी तरफ देखना शुरू करें तो पुराने राजाओंके जमानेमें जैसा होता था, वैसा ही होगा। उस समय राजा अच्छा निकला तो प्रजाकी हालत ठीक रहती थी। राजापर ही सारा दारोमदार था। इस गुलामीकी हालतको खत्म करनेके लिए ही तो हरएकको वोटका हक दिया गया है। लेकिन पेटीमें वोट डालनेसे ही स्वराज्य नहीं हो जाता। जबतक हम अपने परिश्रम-

से अपने गाँवको सजाते नहीं, तवतक सिर्फ वोट देनेसे हम जैसेके तैसे रह जानेवाले हैं। गीता कहती है :

'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो वन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥'

—'अपना उद्धार खुद करना होता है।' जो मरेगा वही स्वर्ग देखेगा। स्वर्ग देखना चाहते हो तो मरनेकी तैयारी करो। गाँव सुखी हो, गाँव आजाद हो, यह चाहते हो तो अपनी ताकतसे काम करो।

१२-६-'५३ —वराही (पलामू)

: ७४ :

नैतिक दवाव और हृदय-परिवर्तनमें फर्क करना ही गलत है। विहारमें अवतक चालीस हजार लोगोंने दान दिया है। जमीन तो ज्यादा नहीं मिली, क्योंकि देनेवालोंमें वहुत से गरीव थे। परन्तु उसका प्रभाव अव वड़े लोगोंपर हो रहा है। उनके दिल अव पसीज रहे हैं। एक प्रेरणा उनमें हो रही है जिसको वे टाल नहीं सकते। राँची जिलेमें तो राजा साहव हमारे एजेण्ट वनकर घूम रहे हैं। क्या यह हृदय-परिवर्तन नहीं है? परंतु हृदय-परिवर्तन हिसावसे नहीं होता, एक मनुष्यका हृदय-परिवर्तन हुआ तो आसपासके पचासों लोगोंपर उसका असर हो जाता है। यहाँपर एक दाना भगत पैदा हुए हैं, जिन्होंने हजारोंको भक्त वना दिया। इसीको मनुष्यके विचारका दवाव कहते हैं, इसीको लोकलज्जा कहते हैं। यह हिंसा-शक्तिसे सर्वथा भिन्न है। वेदमें कहा है :

'अवद्य भिया वहवः प्रणन्ति ।'

—'जो दान दिया जाता है, वह लोकलज्जासे दिया जाता है।' इसीलिए लोकलज्जा एक वड़ी वात है। सारा समाज क्या कहता है—यह देखकर कुछ करना हृदय-परिवर्तन ही है। लेकिन हृदय-परिवर्तनकी डिग्री नापना ठीक नहीं है।

जून, १९५३ —सिसई (राँची)

: ७५ :

'अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः ।'

—'हमें ध्यानमें रखना चाहिए कि हम अन्नका एक कौर भी खाते हैं तो उसके साथ सबकी वासना चिपकी रहती है ।' इसीलिए सबको खिलाकर खाओगे तो वह हजम होगा, अन्यथा नहीं । अक्सर श्रीमानोंको खाना हजम नहीं होता, वे बीमार रहते हैं, क्योंकि वे जो खाते हैं, उसपर सबकी भावना चिपकी रहती है। अगर वे सबको खिलाकर खाया करें तो बीमार ही न पड़ें ।

१४-६-'५३ —नेतरहाट (राँची)

: ७६ :

'अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते । सं भ्रातरो वावृधुः ।'

वेदमें कहा गया है कि 'हम इस तरह रहें कि भाइयोंमें भी कोई छोटा-बड़ा न रहे।' हम तो यहाँतक मानते हैं कि समाजमें भाइयोंके समान समता हो, चाहे छोटे-बड़े भाई रहें; परन्तु वेदको तो इतना भी बर्दाश्त नहीं है। आखिर यह देह हवा, मिट्टी, पानी, आकाश आदि पंचमहाभूतोंसे ही तो बनी हुई है। हमारा बाह्यरूप (शरीर) भी एक-सा ही है और अन्दरकी ज्योति (नूर) भी वही है। जब हमारे शरीर भी एक-से हैं और अन्दर भी एक ही आत्मा है तो फिर ये सारे भेद क्यों ? हरएकको भूखके जितना मिलना चाहिए और हरएकको जितना हो सके दुनियाकी सेवा करनी चाहिए। किसीको भी कम-ज्यादा क्यों मिलना चाहिए ? अफसरोंको बुढ़ापेमें पेन्शन दी जाती है तो फिर मजदूरोंको क्यों नहीं दी जाती ? बढ़ई तीस सालतक काम करता है, फिर भी उसे पेन्शन नहीं दी जाती। ऑफिसमें काम करनवालेको बीमारीके समय छुट्टी मिलती है, तो फिर बढ़ई या चमारको क्यों नहीं मिलती ? जो इन्तजाम करना है, सबके लिए करना है, सबको बराबर करना है।

लेकिन आज तो दुनियामें दर्जे बने हुए हैं। वेतन कम-ज्यादा मिलता है। यह सब देखकर हमें शर्म आती है कि भगवान्ने हम सबको समान पैदा किया है और मरते समय भी सबकी मिट्टी ही बननेवाली है, तो फिर चन्द दिनोंके लिए यह छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-हरिजन आदिके भेद—यह सब क्या हैं ? क्या यह हमें शोभा देता है ? आखिर दुनियामें बड़ा तो एक परमेश्वर ही है। हम, जो मरनेवाले हैं, वे क्या बड़े हैं ?...... हम इस भेदको मिटाना चाहते हैं। हम समता चाहते हैं। समता याने बराबरीका नाता। सब भाई-भाई बनें, मित्र बन— यही हम चाहते हैं।

१५-६-'५३ —सालम नवाटोली (राँची)

: ७७ :

'अत्युत्कटैः पापपुण्यैः इहैव फलमश्नुते।'

—[हमारे हाथमें भगवान्ने वह ताकत दी है, जिससे हम चाहें तो यहाँ-पर स्वर्ग ला सकते हैं और नरक भी ला सकते हैं। गायको घास खाना लाजिमी है, वह गोश्त खा ही नहीं सकती। याने वह पुण्य ही कर सकती है, पाप नहीं। शेरको गोश्त खाना ही लाजिमी है, वह चाहे तो भी घास नहीं खा सकता। याने उसे पाप करना लाजिमी है, वह पुण्य नहीं कर सकता। लेकिन मनुष्य पाप और पुण्य दोनों कर सकता है। वह आजाद है और पशु आजाद नहीं। मनुष्य जानवरसे भी नीचे उतर सकता है और परमेश्वरके करीब भी पहुँच सकता है। भगवान्ने मनुष्यको यह ताकत दी है कि वह चाहे जैसा बने।]

—'हम जो पाप-पुण्य करते हैं उसका फल मरनेके बाद मिलता है। परंतु अत्युत्कट पुण्य या पाप करें तो यहींपर फल मिलता है।' यह बात ठीकसे समझ लीजिये कि भगवान्ने आपके हाथोंमें कितनी सत्ता दी है। आपके हाथमें भगवान् हैं, आप उसकी मददसे चाहे जो बन सकते हैं।

इसलिए गाँववालोंको समझना चाहिए कि वे अपनी ही ताक़तसे गाँवमें स्वर्ग ला सकते हैं, किसी बाहरवालेकी मददसे नहीं।

१९-६-'५३ —टोटो (राँची)

: ७८ :

'दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्।'

हमारे ऋषियोंने गाया है कि 'भारतमें जन्म पाना दुर्लभ है और उसमें भी मनुष्य-जन्म तो और भी दुर्लभ है।' हमारे इस देशके प्रति उनके मनमें कितनी पवित्र भावना थी! 'बहुत पुण्य करनेपर ही भारतभूमिमें जन्म होता है'—इसका क्या अर्थ है? आप जो समझे हैं उससे अधिक इसके मानी हैं। भारतभूमिमें जन्म पाना दुर्लभ है और मनुष्यका जन्म पाना तो और भी दुर्लभ। याने इस भूमिमें कीड़े-मकोड़ेका जन्म पाना भी दुर्लभ है। यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहाँकी धूलिमें जन्तुका जन्म लेना भी भाग्यकी बात है, क्योंकि सत्पुरुषोंके पाँव इस भूमिपर पड़े हैं।

ऐसा वाक्य मैंने दुनियाकी दूसरी किसी भी भाषामें नहीं पढ़ा। हरएक देशमें मातृभूमिके लिए प्रेम होता है। मातृभूमिके प्यारका ठेका हिंदुस्तानने ही नहीं लिया है। परन्तु 'इस भूमिमें जन्तुका जन्म भी पाना दुर्लभ है' ऐसा हमने और कहीं भी नहीं पढ़ा।

भाइयो, ऐसी पुण्यभूमिमें जन्म पाया है तो वैसे ही पुण्यके काम किया करो। छोड़ो ये मालकियतकी बातें। हमारा घर, हमारा परिवार, हमारी संपत्ति, हमारी जमीन—ये सब चीजें हमारी नहीं हैं। ये सबकी सेवाके लिए हमारे पास आयी हैं। हम तो सँभालनेवाले हैं, ट्रस्टी हैं—ऐसी भावना रखो। जहाँ माँगनेवाला पात्र आयेगा वहाँ फौरन उसे दे देनेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

२२-६-'५३ —पालकोट (राँची)

: ७९ :

गाँववालोंको अपना भार दूसरोंपर नहीं लादना चाहिए, खुद ही उठाना चाहिए। यही स्वावलंवन है। यहाँपर जो सब लोग वैठे हैं वे सब कपड़ा पहने हैं, परन्तु यह सारा कपड़ा बाहरसे आया हुआ है। आप बाहरसे कपड़ा क्यों लाते हैं? क्या आपके पास समय नहीं है? गांधीजी प्रतिदिन कातते थे। परमेश्वरकी भी क्या योजना है कि आखिरी दिन भी उनका कातना हो चुका था। कई काम होते हुए भी वे प्रतिदिन कातते थे, क्योंकि वे हिंदुस्तानके लोगोंको समझाना चाहते थे कि अपना कपड़ा खुद बनाओ। बच्चे बोलनेसे नहीं, कृतिसे समझते हैं। इसलिए गांधीजी, जो हम सबके पिता थे, हमें अपनी कृतिसे शिक्षा देते थे।

कपड़ेके विना हमारा एक दिन भी नहीं चलता। कई लोग कई उपवास रख सकते हैं, परंतु एक क्षणके लिए भी नंगे नहीं रह सकते। वेदोंमें कहा गया है :

'युवा सुवासाः परिवीत आगात्,
स उ श्रेयान् भवति जायमानः।'

—'वच्चा जब वस्त्र पहन लेता है तब सभ्य बन जाता है, उसे संस्कार मिलते हैं। कपड़ा सभ्यताकी निशानी है।' अक्सर कहा जाता है कि अन्न पहली वस्तु है और कपड़ा दूसरी। लेकिन बात ऐसी नहीं है, कपड़ा पहली वस्तु है। मैं चार दिन भूखा रह सकता हूँ, पर मुझे कपड़ा चाहिए ही—कमसे कम लँगोटी तो चाहिए ही।

जनता तो कामधेनु है। उससे जो माँगो वह मिल सकता है। हमें लाखों एकड़ जमीन मिली है। पहले कौन विश्वास करता था कि इस तरह जमीन मिलेगी? गांधीजीने लोगोंको खादीकी बात समझायी और लोगोंने सुनी। सारे लोग कात सकते हैं। सूत कातना इतना सरल है कि बाहर बारिश होते रहनेपर भी घरमें वैठे-वैठे कात सकते हैं। कपड़ेकी जरूरत सबको है। अक्सर किसानपर या पैदा करनेवालेपर टैक्स लगाया जाता है।

परन्तु जो कपड़ा पहनता है उसपर टैक्स लग जाता है, यह पूरा टैक्स है। इसलिए हम चाहते हैं कि गाँववाले बाहरसे कपड़ा खरीदकर गाँवका पैसा बाहर न जाने दें, बल्कि अपने हाथोंसे कपड़ा बनायें। जितनी चीजें गाँवमें बना सकते हों, बनायें।

२२-६-'५३ ——पालकोट (राँची)

: ८० :

'अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥'

——'जो अविद्याके पीछे लगे हुए हैं वे अन्धकारमें पैठते हैं। जो विद्यामें मग्न हैं वे और भी (घोर) अंधकारमें पैठते हैं।'

ईशावास्योपनिषद्के अनुसार विद्या और अविद्या दोनों शक्तियाँ हैं। कुछ चीजोंको जानना चाहिए और कुछ चीजोंको नहीं जानना चाहिए। जिन चीजोंको जानना जरूरी है, उनको जानना चाहिए—इसे विद्या कहते हैं। जिन चीजोंको नहीं जानना चाहिए, उन चीज़ोंसे बचना चाहिए—इसे अविद्या कहते हैं। ऐसी चीज़ोंका अपने चित्तपर नाहक बोझ पड़ता है। मनुष्यकी कर्मशक्ति क्षीण हो जाती है। वह एक किस्मकी विद्या तो है, परंतु उसमें नाहक समय नहीं लगाना चाहिए। आसपासके लोगोंकी सेवा करनेके बजाय अगर कोई नाहक जर्मनभाषा सीखने लग जाय तो उसका उपयोग नहीं होगा। ऐसे कई विषय हैं, जिनका जीवनके साथ कोई संबंध नहीं है। उनमें हमें नहीं पड़ना चाहिए। ऐसी चीजोंका अज्ञान ही अच्छा। अज्ञानकी भी उपासना रहती है। आज कई तरहका निकम्मा ज्ञान हमारे कानोंमें तरह-तरहसे ठूँसा जाता है, जैसे रेडियो और सिनेमाके जरिये। ऐसी निकम्मी बातोंसे बचना पुरुषार्थका काम है। उन्हें भूलना बहुत बड़ा काम है। निकम्मे ज्ञानसे, जो नाहक हमारे कानोंमें ठूँसा जाता है, अलग रहना एक प्रकारकी साधना ही है। इसीलिए ज्ञान और अज्ञान——ये दोनों शक्तियाँ हैं, दोनों कामकी चीजें हैं। आजतक हमें लगता था कि सिर्फ

ज्ञान ही कामकी चीज है, परन्तु ईशावास्योपनिषद् कहती है कि ज्ञान और अज्ञान दोनों कामकी चीजें हैं।

हिंदुस्तानका किसान केवल काम ही करता है। वह अज्ञानमें मग्न है। उसके पास रेडियो, सिनेमा, अखवार आदिके जरिये गलत खबरें नहीं पहुँचतीं, यह अच्छा है। परन्तु उसके पास तो पूर्ण अज्ञान है। वह अज्ञानकी ही उपासना करता है, इसलिए अंधकारमें पैठता है। दूसरा कोई शहरका आदमी सिर्फ ज्ञानमें ही पड़ा रहता है, काम नहीं करता, तो वह उससे भी अधिक घोर अंधकारमें पैठता है। क्योंकि किसान अज्ञानकी उपासना करते हुए भी कुछ तो काम करता ही है। परन्तु केवल ज्ञानकी उपासना करनेवाला शहरका मनुष्य दूसरोंके कन्धोंपर बैठता है, वोझ सावित होता है। इसलिए वह भारभूत, पापी वन जाता है। किसानका उपयोग सीमित है, परन्तु वह भारभूत नहीं है। उपनिषद्की यह एक विशेष बात है कि केवल ज्ञानकी उपासना करनेवाला केवल अज्ञानकी उपासना करनेवालेसे वदतर है। शहरवालोंको यह बात सीखनी चाहिए और निकम्मे ज्ञानसे बचना चाहिए। इसीलिए ज्ञान और अज्ञान दोनोंका योग करके समन्वय साधकर अपनी जीवनयात्रा चलानी चाहिए।

१-७-'५३ —राँची

: ८१ :

'कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।'

—'हमें किसानोंके नैतिक वलका संगठन करना है। आखिर किसान ही तो दुनियामें अन्न पैदा करते हैं, फिर भी वे दबे हुए-से हैं। क्योंकि उनकी नैतिक शक्ति जागरित नहीं हुई है। नैतिक जागर्ति जितनी उनमें हो सकती है उतनी और किसीमें नहीं। नीतिका अधिष्ठान खेती है। खेती सबसे उत्तम उद्योग है। खेती करनेवाला नीतिमान् और परमेश्वरका उपासक होता है, क्योंकि वह ब्रह्मदेवका काम करता है। इसीलिए वेदोंने आज्ञा दी है कि खेती करो, उसमें कम मिलेगा तो भी उसे बहुत मानो।

जैसे व्यापारमें ज्यादा पैसा मिलता है, वैसे खेतीमें नहीं मिलेगा; परन्तु खेतीमें जो पैसा मिलता है, उसे वहुत मानो। व्यापारका पसा निकम्मा होता है। खेतीमें जो फसल पैदा होती है, वह बहुत है, चाहे वह ऐशो-आरामके लिए काफी न हो। खेतीमेंसे लक्ष्मी पैदा होती है और दूसरे उद्योगोंसे तो सिर्फ धन पैदा होता है, लक्ष्मी नहीं। धनपति कुबेर है तो लक्ष्मीपति भगवान् हैं। यह जो सारी सृष्टि दीखती है, यह जो वनश्री सस्यश्री है, यह जो तरकारी, अनाज और फल पैदा होते हैं, सृष्टिमें मनुष्यके प्रयत्नसे जो सारी सुंदरता निर्माण होती है, वह लक्ष्मी है।

लक्ष्मी प्रसन्न होकर किसानके पास जाती है। ऐसे किसानसे संपर्क रखनेका भूदान-यज्ञसे बेहतर दूसरा कोई तरीका नहीं है।

१-७-'५३ —रांची

: ८२ :

शास्त्रोंमें लिखा है कि 'साप्तपदीनसख्यम्।' अर्थात् संतोंके साथ सात कदम चलनेपर उनसे सख्य हो जाता है। हम तो इस शहरमें सात कदम नहीं, सात दिन रहे हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमने परमेश्वरकी एक साथ सात प्रार्थनाएँ कीं। इसलिए आपमें और हममें गाढ़ मैत्री हो जाती है। इस हालतमें मनुष्य अपने हृदयकी खास चीज खोलकर रख देता है।

हमने भूदानका जो काम शुरू किया है, उसका सबसे बड़ा महत्त्व का हिस्सा हमारी यह सामूहिक प्रार्थना है। हम उसकी जितनी कीमत करते हैं उतनी न तो अपने व्याख्यानकी, न पैदल-यात्राकी और न लोगोंसे मिलनेकी। ईसा मसीहने कहा है कि 'अगर आप परमेश्वरकी सच्ची प्रार्थना करना चाहते हैं तो जिस किसीके साथ आपका झगड़ा, वैर, द्वेष या मनमुटाव हो उस शख्ससे पहले मिल लीजिये, उसका प्रेम हासिल कीजिये।' अगर आपने किसीके ऊपर गुस्सा किया हो तो प्रार्थनाके पहले उससे क्षमा माँग लीजिये। अपना दिल निर्विकार और पाक बनाकर प्रार्थना-में बैठिये। हम हर दिन प्रार्थना करते जाते हैं और हमारे दिलसे मनो-

मालिन्य, वैषम्य, मनमुटाव कम होते जा रहे हैं—ऐसा अनुभव हो तो समझना चाहिए कि प्रार्थना सफल हुई। एकसाथ भोजन करने, एक साथ खेलने और मिल-जुलकर काम करनेसे प्रेमभाव बढ़ता है। परन्तु प्रेम बढ़ानेकी शक्ति इन सबसे अधिक एकसाथ प्रार्थना करनेमें है। भगवान् के सामने 'वही सब कुछ है और हम कुछ भी नहीं हैं' यह सोचकर खाली हृदयसे—शून्य हृदयसे—हम प्रार्थनामें बैठें तो उस खाली हृदयमें वह आता और हमारे वैरभाव मिट जाते हैं। सहभोजन, सहकार्य आदिमें जो शक्ति है, उससे बहुत अधिक शक्ति एकसाथ बैठकर भगवान्का नाम लेनेमें है। इसीलिए तो गीतामें कहा गया है :

'नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये नहि।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥'

६-७-'५३ —रांची

: ८३ :

आप सब लोग काम करनेवाले हैं। किसने कितना काम किया, इसका पृथक्करण मत करो। अगर रामजी बंदरोंसे यह कहते कि 'तुमने क्या किया ? हमने ही तो सब काम किया' तो क्या होता ? परन्तु उन्होंने बंदरोंको यश दिया। रामने बंदरोंका यश गाया और बंदरोंने रामका—इसीलिए रामायण हुई। इसी तरह हम एक-दूसरेका यश गाते जायेंगे तो सबका बल बढ़ता जायगा। समुद्रमें क्या पता चलता है कि किस नदीका कितना पानी आया। भूदानका काम भी समुद्रके जैसा है। किसने कितना काम किया, यह कहना तो बच्चोंका काम है। भर्तृहरिने लिखा है :

'परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम् ......।'

—'दूसरोंके गुणों और अपने दोषोंको बढ़ाकर बताना ही सज्जनताका लक्षण है। तभी गुणोंका विकास होता और दोष कम होते हैं। इसलिए आप भी दूसरेके कामोंका गौरव कीजिये और अपने कामको कम समझिये।

१०-७-'५३ —ओरमाँझी (राँची)

: ८४ :

भू-दानका काम शुद्ध धर्मका काम है, जो सब मानवोंको समान रूपसे लागू होता है। इसीलिए वह सबको प्रिय हो गया है। लेकिन यह काम बहुत त्याग माँगता है। जमीन देनेवालोंको तो थोड़ा-सा ही त्याग करना पड़ता है, क्योंकि वे समझ गये हैं कि अब जमीन देनी ही पड़ेगी। इसलिए मुझे उसकी कोई चिंता नहीं है।

मुझे मुख्य चिंता यह है कि इस धर्मविचारसे अपने दिलको ओतप्रोत—परिपूर्ण—करके इसके सामूहिक प्रचारके लिए कुछ लोग निकल पड़ें। इसलिए मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है कि धर्म समझनेवाले व्यक्तियोंके संपर्कमें आऊं। शंकराचार्यने लिखा है:

'गुणाधिकैर्हि गृहीतः अनुष्ठीयमानश्च धर्मः प्रचयं गमिष्यति।'

—'जब गुणवान् मनुष्य धर्मको ग्रहण करते हैं तब उनके ज़रिये धर्म जल्दी फैलता है।' भगवान्ने भी गुणवान् और पात्र समझकर अर्जुनको धर्मकी दीक्षा दी। इसलिए हमारी यात्रामें हमें कुछ गुणवान् मनुष्य मिलें तो हम समझते हैं कि हमारी यात्रा सफल होगी। ऐसे मनुष्योंसे हम व्यक्तिगत संपर्क रखना चाहते हैं। ऐसे लोगोंने हमारी दृष्टि ग्रहण की, जो कि उसके प्रचारमें समर्थ हैं. तो फिर आगे जनताके सामने विचार ले जाना आसान है। जनता बोलनेसे नहीं, आचरणसे समझती है। इसलिए करनेकी मुख्य बात तो यह है कि जहाँ मैंने धर्मविचारका संकल्प किया वहाँ धर्म क्या है, इसका चिन्तन-मनन करनेवाले और उसमेंसे जो विचार जँचें, उसपर फौरन अमल करनेवाले और उसके अनुसार अपना जीवन बदलनेवाले कार्यकर्ता चाहिए।

—चटुपालु (राँची)

११-७'-५३

: ८५ :

आज समाजमें ऊँच-नीचके खयालमें दर्जे बने हुए हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि पुराने जमानेमें जो वर्ण थे, वे भी दर्जे थे। परन्तु जहाँतक मैंने

वर्णाश्रम धर्मको समझा है—हिन्दू धर्मका अध्ययन किया है, मैं नहीं मानता कि वर्ण दर्जे थे। गीताने तो कहा है :

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥'

—'हर कोई, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, अगर अपना काम सद्‌बुद्धिसे करता है तो उसे मोक्ष ही मिलेगा।' उसमें यह नहीं कहा है कि, शूद्र अपना काम अच्छी तरहसे करता है तो उसे अगला जन्म ब्राह्मणका मिलेगा और फिर मुक्ति मिलेगी; बल्कि यह कहा है कि शूद्रको इसी जन्ममें मोक्ष मिल सकता है यदि वह अपना काम प्रामाणिक भावसे और परमेश्वर-समर्पणकी बुद्धिसे करे। ब्राह्मणको वेदाध्ययनसे जो मुक्ति प्राप्त होगी, शूद्रको ी जन-सेवासे वही मिलेगी। इसलिए जो वर्ण थे, वे कर्मविभाजनके लिए बने थे, दर्जे नहीं थे।

'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।'

—'सबमें परमेश्वर समान रूपसे रहता है।' उस परमेश्वरका ग्रहण करना चाहिए। जो ऊपरके चोलेको भूल जायगा, वही मोक्ष पायेगा।

इस तरह उस समय दर्जे नहीं थे। लेकिन आज तो दर्जे बने हैं। हमने दिल्लीमें देखा कि तनख्वाहके मुताबिक ए०, बी०, सी०, डी० टाइपके मकान बन गये हैं। मैं तो यह देखकर ताज्जुबमें रह गया। क्या मजदूरको कम हवा की जरूरत है और अफसरको अधिक हवाकी? क्या एक को स्नान करनेके लिए पानी चाहिए और दूसरेको नहीं? हाँ, अन्नके मामलेमें थोड़ा-सा फर्क हो सकता है। लेकिन हवा, पानी और सूरजकी रोशनीके मामलेमें फर्क क्यों?

......लेकिन इन लोगोंने आज समाजमें दर्जे बनाये और उसीके अनुसार घर बनाये हैं। यह जो सारा इन्तजाम है, वह बिलकुल गलत है। समाजके जितने भी काम हैं, उन्हें करनेवालोंकी सामाजिक प्रतिष्ठा समान होनी चाहिए, उनका आध्यात्मिक मूल्य समान होना चाहिए। सर्वोदय-समाजका यह एक बुनियादी उसूल है।

१३-७-'५३ —रामगढ़ (हजारीबाग)

: ८६ :

मैं चाहता हूँ कि हर पक्षवाले अपना-अपना विचार जनताके सामने रखते हुए एक-दूसरेसे प्यार करें। फिर जनता जिसे चुनेगी वे सरकारमें जाकर उसकी सेवा करेंगे, और जिन्हें नहीं चुनेगी वे बाहर मुक्त रहकर जनता-की सेवा करेंगे। दोनों सेवा ही करेंगे और एक-दूसरेसे प्यार करेंगे। जो सीधे जनतामें जाकर सेवा करेंगे, वे शंकर भगवान्‌के समान होंगे और जो सत्तामें जायँगे, वे विष्णु भगवान्‌के समान होंगे। विष्णु भगवान् सत्ता और संपत्तिमें भी विरक्त—अनासक्त—थे। वे लक्ष्मीसे भी अलिप्त थे। इसी तरह सत्तामें जानेवाले राजा जनक जैसे होंगे और जो सत्तामें नहीं जायँगे वे शुकदेव जैसे होंगे। जनकको देखकर लोग कहते थे :

'जनको जनक इति वै जना धावन्तीति।'

—'यह जनक आ रहा है, मेरा बाप आ रहा है, ऐसा कहकर लोग दौड़कर उसके पास आते थे।' जनकके बारेमें कहा जाता है कि वे जब सोते थे तो नजदीक यज्ञकी अग्नि होती थी।.......अगर सोतेमें कहीं उसपर पाँव पड़ा तो जाग नहीं जाते थे। इसका मतलब यह है कि वे भोगमें भी अनासक्त थे। और शुकदेव तो विरक्त थे ही। इसी तरह जिन्हें सत्तामें जाना है, उन्हें जनक महाराजकी तरह अलिप्त रहना होगा। और जिन्हें सत्तामें नहीं जाना है उन्हें शुकदेव जैसे विरक्त रहना होगा।

१८-७-'५३ —हजारीबाग

: ८७ :

हमारे बोलनेमें अत्यन्त मृदुता, नम्रता और मधुरता हो तो ही हम प्रतिस्पर्धीको जीत सकते हैं। क्योंकि आखिर हम जो कर रहे हैं वह एक धर्मकार्य है। मनु महाराजने कहा है कि धर्मकार्यमें मधुर और प्रिय वाणीका ही प्रयोग करना चाहिये :

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥'

१८-७-'५३ —हजारीबाग

: ८८ :

गांधीजीकी यह खूबी थी कि जिसे मददकी सबसे अधिक जरूरत है, उसकी सर्वप्रथम मदद करते थे। अभी कवि दुखायलने मुझे सुनाया कि 'मदद देनेका क्रम है—'पहले भुखिया,—फिर दुखिया और वादमें सुखिया।' गांधीजी तो हमेशा इसी तरह सोचते थे कि जिन्हें मददकी सबसे प्रथम आवश्यकता है, उन्हें मदद देनेका तरीका ढूँढ़ा जाय। इसीमेंसे चरखा निकला। यह उनकी अद्‌भुत प्रतिभा थी, काव्यशक्ति थी। सिर्फ कुछ सतरें लिख डालनेसे कोई कवि नहीं बन जाता। यास्काचार्यने कहा है कि 'कविः क्रान्तदर्शीः।' जिसे क्रान्त दर्शन होता है, जिसे दूरका दर्शन होता है, जिसे सूक्ष्म दर्शन होता है वह कवि है। इसी अर्थमें गांधीजी कवि थे। उन्होंने कई साल पहले कह दिया था कि हिंदुस्तानके लिए ग्रामोद्योग जरूरी है। नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, जमीनका बँटवारा आदिके संबंधमें भी उन्होंने कई साल पहलेसे कह रखा था।

१८-७-'५३ —हजारीबाग

: ८९ :

इस देशमें जो समाज-व्यवस्था बनी थी, उसकी बुनियादमें दो विचार थे। उसमें ऊँच-नीचका खयाल नहीं था। हर कोई अपना-अपना काम निरहंकारभाव और निष्काम बुद्धिसे करके मोक्षका अधिकारी बन सकता है—यह एक बुनियादी विचार था।

दूसरा बुनियादी विचार यह था कि सबको समान वेतन, खाना-पीना मिलना चाहिए। ब्राह्मणको खाना मिल गया, सालभरमें एकआध कपड़ा मिल गया तो वह घंटों पढ़ाता था। लेकिन आजकल कालेजमें प्रोफेसर सिर्फ तीन-चार घंटे काम करते और पाँच सौ रुपये तनख्वाह लेते हैं। आज विद्या बाजारमें आ गयी है, पर पहले ऐसा नहीं था। ब्राह्मणने विद्या हासिल की तो दूसरोंको विद्या देना उसने अपना कर्तव्य माना था। लेकिन आजकल विद्या बेची जाती है। पेटीकी यह चिन्ता क्यों ? यह बात समझ

में नहीं आती। भगवान्‌ने तो हमें पेट ही दिया है, पेटी नहीं दी, इसलिए सिर्फ पेटकी ही चिन्ता होनी चाहिए, पेटीकी नहीं।

'अद्य अद्य श्वः श्वः।'

—'आजका आज और कलका कल।' कलके लिए आज संग्रह करनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए।

२१-७-'५३ —दाऊजीनगर (हजारीबाग)

: ९० :

हमारी जो प्राचीन वर्णव्यवस्था बनी थी, उसमें क्षत्रियको सेवक माना गया था। हिंदुस्तानमें जो तीन-चार बड़े सम्राट् हो गये हैं, उनमें हर्षका नाम आता है। हर्षके कपड़ेका वर्णन आया है। वह मेरे समान एक नीचे और एक ऊपर धोती पहनता था, किसानकी तरह सादगीसे रहता था। राजाकी यही खूबी थी कि संपत्तिका सर्वस्व दान देते जाना, फिरसे कमाना और फिरसे दान देना—यह क्रिया चलती थी। सूर्यनारायण समुद्रसे पानी खींच ले जाते हैं और जितना ले जाते हैं उतना बादमें लौटा देते हैं। खारा पानी ले जाते हैं और मीठा पानी दे जाते हैं। इसी प्रकार राजाको होना चाहिए। समाजसे पैसा कमाकर समाजको ही लौटाकर आखिरमें उसे वनमें जाना चाहिए, नहीं तो वह नरकमें जाता है। 'राज्यांते नरकप्राप्तिः' —इससे बढ़कर शाप क्या हो सकता है? इसीलिए शासकका काम केवल सेवा करना है।

२१-७-'५३ —दाऊजीनगर (हजारीबाग)

: ९१ :

हम मानते हैं कि शंकराचार्यने भगवान् बुद्धका ही काम आगे बढ़ाया। इसीलिए उनको 'प्रच्छन्न बुद्ध' कहा जाता है।

बुद्ध-धर्मका उज्ज्वल आचरण हिंदुस्तानमें बहुत हुआ है। हमारा दावा नहीं है कि हमने बहुत अच्छी तरह आचरण किया, परन्तु जो भी किया

उसपरसे कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्धका संदेश हमारे जीवनमें उतर गया है। उनका मुख्य संदेश अहिंसाका था। अहिंसा जितनी यहाँपर फली-फूली, उतनी दूसरे देशोंमें फूली-फली या नहीं, हम नहीं जानते। बुद्ध-धर्मकी दया, करुणा और हमारा आत्मज्ञान दोनोंके मेलसे आजका हिन्दू-धर्म बना है। बाकीके धर्म पचास तरीके बताते हैं, लेकिन हिन्दू-धर्म-में सिर्फ दो बातें हैं : एक है ब्रह्मविज्ञान, जिसे 'वेदान्त' कहते हैं और दूसरी है 'भूतदया।' इनमेंसे एक भी न हो तो वह हिन्दू-धर्म नहीं हो सकता। बुद्धधर्मकी भूतदया, करुणा और हमारा आत्मज्ञान, तीनोंको मिलाकर शंकराचार्यने स्तोत्र बनाया है जो उनके मठोंमें रोज बोला जाता है। वह षट्पदी इस प्रकार है :

'अविनयमपनय विष्णो, दमय मनः, शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय, तारय संसारसागरतः ॥'

—'भगवन्, तू ही मेरी भूतदयाका विस्तार कर।' भगवान् बुद्धने भी भूत-दयाकी ही बात कही थी। इसीलिए हिंदूधर्म दो शब्दोंसे मालूम हो सकता है : (१) ब्रह्मविज्ञान और (२) भूतदया । इसीमें हिंदूधर्म और बुद्ध-धर्मका सार है।

२-८-'५३ —बोधगया

: ९२ :

भगवान् शंकराचार्यने कहा है कि मनुष्यके तीन परम भाग्य होते हैं :

'मनुष्यत्वम्, मुमुक्षुत्वम्, महापुरुषसंश्रयः ।'

—'एक है 'मनुष्यत्वम्', दूसरा 'मुमुक्षुत्वम्' और तीसरा 'सत्संगत्वम्'। भगवान् शंकराचार्यने इन तीनों भाग्योंका वर्णन किया है। हममें ये तीनों मौजूद हैं। परमेश्वरने हमें मनुष्यत्व दिया है, मुक्तिकी इच्छा दी है और महापुरुषोंका सत्संग दिया है। .... शास्त्रकारोंने लिखा है कि 'जिनके मन-में शत्रु-मित्रका भाव नहीं होता वे महापुरुष हैं।' शास्त्रोंमें महापुरुषोंका वर्णन है, लेकिन हमें तो ऐसा पुरुष अपनी आँखों देखनेका परम सौभाग्य

मला है। गांधीजी जैसा महापुरुष हमारी आँखोंके सामने हो गया है। हमें उनके साथ बरसोंतक रहने और उनके साथ कार्य करनेका मौका मिला है—यह हमारा परम सौभाग्य है।

गांधीजीके मनमें किसीके प्रति भी वैरकी भावना नहीं थी। सत्याग्रहीके लिए निर्वैरता अत्यंत आवश्यक है। अक्सर लोग समझते हैं कि सत्याग्रह सिर्फ दुश्मनोंके खिलाफ किया जाता है। पर जिसके मनमें किसी भी तरहकी दुश्मनीका भाव होता है, वह सत्याग्रही हो ही नहीं सकता। गांधीजी अंग्रेजोंसे कहते थे कि 'आप यहाँ मालिक बनकर मत रहिये। सेवाके लिए रहना चाहते हों तो रहिये। हम आपसे मित्रके नाते कहते हैं कि 'भारत छोड़ दो, इसीमें आपका भला है।' कोई शाब्दिक या बोलनेकी बात नहीं है, यह तो सज्जनके हृदयकी अनुभूति है। गांधीजीके दिलमें अत्यंत निर्वैरता थी।

३-८-'५३ —गया

: ९३ :

साहित्यिकोंमें एक मूलभूत गुण होना चाहिए। उसके बिना कोई साहित्यिक नहीं हो सकता। वह है—'सेन्सेरिटी' यानी सचाई। और कुछ गुण हों या न हों, साहित्यिकको सच्चा होना ही चाहिए—वह सच्चा सत्पुरुष हो या सच्चा दुर्जन। सच्चा सत्पुरुष हो तो सोनेमें सुगन्ध आ जायगी। लेकिन दुर्जन हो तो भी सच्चा दुर्जन ही हो। कूटनीतिज्ञ अक्सर अंदरसे एक रहते और बाहरसे दूसरे दिखाई देते हैं। वे चाहे दुनियाको ठग लें, परन्तु अपने आपको ठग नहीं सकते। इसीलिए वे अपनेको प्रकट भी नहीं कर सकते।

कुछ लोग मनके भाव प्रकट नहीं करते। जहाँ यह होता है, वहाँ 'वाणीकी चोरी' होती है। मनु महाराजने कहा है कि 'जो दस चोरियाँ करते हैं, वे उतने दोषी नहीं जितने वाणीकी चोरी करनेवाले दोषी ह।' सारे अर्थ वाणीमें निहित हैं—भरे हैं :

'वाच्यर्था निहिताः सर्वे, वाङमूला वाग्-विनिःसृताः।
तां तु यः स्तेनयेद् वाचं, स सर्वस्तेयकृत् नरः॥'

—'सारे अर्थ वाणीमेंसे निकलते हैं, इसलिए जिसने वाणीकी चोरी की, उसने दुनियाभरकी सब चोरियाँ कर डालीं।' मनुमहाराजके इस वचनका मूल वेदोंमें है। 'जो वाणीका चोर यानी 'वाच-स्तेन' है, भगवन्! उसके मर्मपर प्रहार करो'—वेदोंमें भगवान्‌से ऐसी प्रार्थना की गयी है।

डाक्टरके पास जानेपर अपना सारा दुःख बताना पड़ता है, नहीं तो डाक्टर इलाज नहीं कर सकता; वैसे ही परमेश्वरके सामने सब खोलकर रखना पड़ता है। परमेश्वर और कौन है? परमेश्वर तो यह सारी जनता है। उसके सामने सब कुछ खोलकर रख देनेकी हिम्मत चाहिए। पाप, पुण्य जो कुछ हो, वह सब खोलकर रखना होगा।

४-८-'५३ —गया

: ९४ :

गांधीजीने स्वराज्यके बाद हमें एक नया मंत्र दिया। उस नये मंत्रका नाम है—'सर्वोदय'। यह कोई नयी चीज नहीं और न नया मंत्र ही है, यह तो पुराना ही मंत्र है। ऋषियोंने कहा था—'**सर्वभूतहिते रताः।**' हम सबका उदय चाहते हैं। हमें सबके लिए काम करना चाहिए।

अब इस वैज्ञानिक युगमें लोग नये ढंग से सोचने लगे हैं। नये-नये विचार सामने रखते हैं। पुराने शब्दोंका नया अर्थ देते हैं, जिससे कभी-कभी अनर्थ हो जाता है, क्योंकि विज्ञान अभी अपूर्ण है। अपूर्ण विज्ञान से अपूर्ण मंत्र दुनियाके सामने रखे गये हैं। पाश्चात्योंका जो विज्ञान चल रहा है, वह अधूरा है। उसने एक नया विचार दिया है और वह है—'अधिक-से-अधिक लोगोंका अधिक-से-अधिक भला' ('ग्रेटेस्ट गुड आफ दि ग्रेटेस्ट नम्बर')। यह एक खतरनाक शब्द निकला है। विज्ञानके युगमें यह जो शब्द मिला, उसकी चमक-दमकमें आकर हमने उसे अपने हितका मान लिया। लेकिन उसमेंसे भेदासुरका निर्माण हुआ। कम संख्या और अधिक संख्यामेंसे संख्यासुर भी निकला। जबसे हम इस 'मेजारिटी, माइनॉरिटी' (बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक) की बहसमें पड़े, तभीसे इस

अधूरे मंत्रके कारण दुनियाके हर देशमें झगड़े चले। लेकिन इस अधूरे मंत्रके कारण ये विचार भी एकांगी हो गये। इसकी पूर्ति तो आत्मज्ञानके दर्शनसे ही हो सकती है। पूर्ण विचार तो यह है कि सबका भला होना चाहिए, अधिक-से-अधिक लोगोंका नहीं। क्योंकि इसमें जो संख्यामें कम हैं, उनपर अन्याय होता है। हम परिवारमें ऐसा कभी नहीं सोचते कि परिवारके नौ मनुष्योंका भला हो और एकका न हो। पर समाजका सवाल आते ही विज्ञानने कहा कि 'अधिक-से-अधिक लोगोंका अधिक-से-अधिक भला होना चाहिए।' पर हम तो सबका भला चाहते हैं। विज्ञान अपूर्ण मंत्र है और सर्वोदय पूर्ण मंत्र। सर्वोदयमें आत्माका विचार है। उसका अभ्युदय आत्माके ज्ञानमें है। सर्वोदयने पूरा विचार किया है। यह पूर्ण, सही और शुद्ध है। 'बीसके विरुद्ध पचीस' ऐसी रायको हम गलत मानते हैं। आत्माके टुकड़े नहीं हो सकते। लेकिन हमने तो आज आत्माके टुकड़े कर ही डाले हैं। वास्तवमें आत्मा एक, अविभाज्य, पूर्ण, समान, निर्दोष और हरएक प्राणीमें समान रूपसे विद्यमान है। 'हम पूर्ण हैं, यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है, पूर्णसे निष्पन्न होता पूर्ण है।' उपनिषदोंमें गाया गया है :

'पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।'

आत्मज्ञान पूर्ण है, इसलिए उसमेंसे पूर्ण ही विचार निकलते हैं। उसमें 'बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक' (मेजारिटी, माइनॉरिटी) की गुंजाइश नहीं है।

९-८-'५३ —हुल्लासगंज (गया)

: ९५ :

हिन्दुस्तानमें भिन्न-भिन्न पक्ष हैं और उनमें आपसमें मतभेद हैं; परन्तु वे सब पक्ष भूदानका काम कर रहे हैं। उन्होंने इसे मान लिया है। अभीतक तो हमें इस कामके विरोधी नहीं मिले। एक-दूसरेके विरोधी विचार होते हुए भी भूदानके लिए वे एक ही प्लेटफार्मपर आकर, कंधेसे-कंधा लगाकर काम कर रहे हैं। ऐसे दृश्य अधिकाधिक दिखाई दे रहे हैं। आगे चलकर दिखाई देगा

कि सारे पक्ष इस काममें लगे हुए हैं। सारे समाजको एकरस बनानेका हमारा प्रयत्न सफल होनेवाला है और इसीसे एक महान् शक्ति प्रकट होनेवाली है। शंकराचार्यके गुरु आचार्य गौडपाद कहते हैं :

'स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु, द्वैतिनो निश्चिता दृढम् ।
परस्परं विरुद्ध्यन्ते, तैरयं न विरुद्ध्यते ॥'

—'मैं सबका हूँ और सब मेरे हैं, चाहे आपका आपसमें कोई मतभेद हो, परन्तु मेरे साथ आपका कोई मतभेद नहीं हो सकता । आप द्वैतियोंमें परस्पर विरोध हो, पर मैं अद्वैती हूँ । इसलिए मेरे साथ आपका कोई विरोध नहीं हो सकता।' यही मेरा भी कहना है—महान् कार्य तो **'सर्वेषाम-विरोधेन'** करने होते हैं।

जो द्वैती होते हैं, वे आपसमें झगड़ा करते—पक्षभेद निर्माण करते हैं। जो समग्रको नहीं मानते वे अंशको मानते हैं। वह अंश चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वे अंशवादी ही होते हैं। उन्हींको द्वैतवादी कहा जाता है। वे पक्के निश्चयवाले होते हैं । अपने-अपने विचार अपनी पार्टी (पक्ष) को देते और उसी विचारको श्रेष्ठ मानते हैं । इसीलिए वे एक-दूसरेके विरोधमें खड़े होते हैं । वे अपने-अपने धर्म, पंथ और पक्षको बढ़ावा देनेको ही श्रेष्ठ कर्म समझते और आपसमें झगड़े पैदा करते हैं। लेकिन उन सब पक्षोंका समावेश सर्वोदयके पेटमें होता है। सर्वोदयका किसीने विरोध नहीं किया, क्योंकि वह सबको पेटमें समा लेनेवाला है—वह अद्वैतवादी है।

जो भूदानमें आते हैं, वे सब एकसाथ काम करते हैं । उनके मनमें मतभेद रहता है, लेकिन जैसे-जैसे वे काम करते जायँगे, वैसे ही वैसे भेद मिटेंगे और मनमें एक-दूसरेके प्रति द्वेषभावना नहीं रहेगी । यह दृश्य अब दिखाई दे रहा है । जो आजतक एक-दूसरेसे बात तक नहीं करते थे, वे आज मिलकर काम कर रहे हैं। हाँ, अभी भी उनके दिलोंमें कुछ हिचकिचाहट जरूर है, लेकिन अब विरोधी विचार नहीं रहेंगे और

सारा समाज एकरस बनेगा, ऐसी हम अपेक्षा रखते हैं। सर्वोदय-विचारकी यह खूबी है कि वह परस्पर-विरोधी सारे पक्षोंको अपने पेटमें समा लेता है।

९-८-'५३ —हुल्लासगंज (गया)

: ९६ :

धर्म अनेक हैं, लेकिन सब धर्मोंका मूलतत्त्व एक ही है। मुक्तिके लिए एक ही मार्ग है :

'असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।'

—'हमें असत्यमेंसे सत्यमें जाना है। अंधरेमेंसे प्रकाशमें जाना है। विकार-मेंसे निर्विकार की तरफ जाना है।' सब धर्मोंने अलग-अलग तरीकोंसे यही समझाया है। हम सब ऋषियोंको मानते हैं, चाहे वे किसी भी धर्मके हों। उन्हींकी प्रेरणा और आशीर्वादसे हमारा यह कार्य चल रहा है।

१७-८-'५३ —नालन्दा (गया)

: ९७ :

हमारे ग्रंथ बताते हैं कि यहाँ विद्याका अध्ययन प्राचीन कालसे चल रहा है। विद्यार्थी उषःकालमें अपने गुरुके पास विद्याध्ययन करते थे। वे बड़े तड़के उठते और कुछ चिंतन-मनन भी करते थे। प्रातःकालके समय जो सोता रहता है, वह अपना अमूल्य समय खोता है। वेदोंमें कहा गया है :

'यो जागार तं ऋचः कामयन्ते ।'

—'जो जागते हैं, उनको भगवान् स्मरण करते हैं। ऋचाएँ उन्हें स्फूर्ति देती हैं।' सुबह जागनेसे बुद्धि जागरित रहती है, तेज रहती है। इसलिए सुबह उठकर अध्ययन करना चाहिए।

१७-८-'५३ —नालन्दा (गया)

: ९८ :

उपनिषद्में एक राजा अपने राज्यका वर्णन करता है :

'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः, न मद्यपः ।
न अनाहिताग्निः, न अविद्वान्...... ॥'

—'मेरे राज्यमें न कोई चोर है और न कोई कंजूस ।' जहाँ कंजूस होते हैं, वहाँ चोर होते हैं।' हमने कई दफ़ा कहा है कि कंजूस चोरके बाप हैं—कंजूस चोरीको बढ़ावा देते हैं। उसने यह भी कहा कि 'मेरे राज्यमें कोई भी मद्य नहीं पीता ।' हिंदुस्तानमें उस समय कोई मद्य नहीं पीता था, लेकिन अंग्रेजोंने शराबको फैशनेबुल बनाया। आज तो बड़े-बड़े शहरोंमें शराब खुलेआम चलती और बिकती है । उसे रोकनेमें हमें डर लगता है। उस राजाने यह भी कहा कि 'मेरे राज्यमें कोई अविद्वान् नहीं है, ऐसा कोई नहीं है, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानता। 'मेरे राज्यमें ऐसा कोई नहीं जो भगवान्की पूजा नहीं करता।' याने बहुत प्राचीन कालसे यहाँपर विद्याका प्रसार था ।

लेकिन आज हमें विद्या बढ़ानेकी जरूरत है। बहुत अध्ययन करना है—आत्मज्ञान हासिल करना है और विज्ञान भी हासिल करना है । दोनोंमें ताकत है। पक्षी दो पंखोंसे उड़ता है। आत्मज्ञान और विज्ञान, ये मानवके दो पंख हैं। हमें दोनोंका अध्ययन करना है। प्राचीन कालसे चला आया आत्मज्ञान हासिल करना है और पश्चिमसे विज्ञान लेना है ।

अगस्त '५३

: ९९ :

'अखिल जागतिक डॉक्टर परिषद्' ने कहा है कि 'जैसे-जैसे हम नये-नये उपचार खोज रहे हैं वैसे-वैसे नयी-नयी बीमारियाँ भी निकल रही हैं।' यह क्या तमाशा है ? बीमारी और वैद्य साथ-साथ ही बढ़ रहे हैं ! सूर्य-किरण और अंधकार हाथमें हाथ मिला, गलेसे गला लगाकर आगे

बढ़ रहे हैं--इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि खाया हुआ हजम नहीं हो रहा है। व्यासने कहा है :

'प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः ॥'

—'श्रीमानोंमें हजम करनेकी शक्ति नहीं होती। हाँ, खानेकी इच्छा बहुत होती है। और दरिद्र मनुष्य लकड़ी भी पचा सकता है।' जिसमें शक्ति नहीं है, उसे ज्यादा खानेको मिलता है और जिसे भूख अधिक है उसे कम मिलता है। ऐसे श्रीमानोंपर तो दया आनी चाहिए। श्रीमान् दुनिया-को लूटकर पैसे जमा करता और फिर डाक्टर उसे लूटता है। जब वह बीमार होता है तो डाक्टर बिना पैसे उसकी नाड़ी भी नहीं देखते। यह कितनी क्रूरता है उस बेचारेपर ! इस तरह सबका प्यार खोकर, दुनियाका विरोधकर, पाचनशक्ति घटाकर पैसे कमानेवाला कैसे सुखी होगा ?

श्रीमानोंके पास मत्सर लायक कोई चीज है ही नहीं। उनको खुली हवा, सूरजकी किरणें नहीं मिलतीं, क्योंकि वे महलोंमें दीवालोंके अंदर बंद रहते हैं। इसलिए अमीरोंपर तो दया आनी चाहिए, उनका मत्सर नहीं होना चाहिए।

सितम्बर '५३ —चकाई (मुंगेर)

: १०० :

'संपत्ति-दान-यज्ञमें' एक दफा दान देनेकी बात नहीं है, जिंदगीभर देनेकी बात है। दरिद्रनारायणके लिए छठा हिस्सा आजीवन देना है। लोग हमसे पूछते हैं कि आजीवन दान कैसे दिया जा सकता है ? हमारा उनसे कहना है कि आप आजीवन खा कैसे सकते हैं ? यह कितना कठिन व्रत आप निभा रहे हैं कि जन्मसे लेकर मृत्युतक खाना खायेंगे। और एकादशीके दिन उपवास करेंगे तो उस दिन भी कुछ-न-कुछ खा ही जायेंगे। आजीवन व्रत लेना बहुत आसान चीज है। वेदमें कहा गया है :

'प्राण्याच्चैव अपान्याच्च ।'

—'मरनेतक प्रतिज्ञापूर्वक साँस लो।' श्वासोच्छ्वास कितना कठिन व्रत है। व्रत लेनेको तो उन्होंने इसलिए कहा कि वे चाहते थे कि 'श्वास-श्वाससे राम कहें, वृथा श्वास न लें।' प्रतिक्षण रामके कामके लिए देना चाहिए, यह उस प्रतिज्ञाका अर्थ था। हमारी आँखोंने आजीवन देखनेका व्रत लिया है। हमारे पैरोंने आजीवन चलनेका व्रत लिया है। उनको यह कठिन नहीं मालूम होता, क्योंकि यह सब नैसर्गिक—स्वाभाविक—हो गया है। उसी प्रकार त्यागका व्रत भी नैसर्गिक और स्वाभाविक ही है, जिसका पालन माताएँ घर-घर कर रही हैं। माता अपने बच्चेसे कितना प्यार करती है, उसके लिए कितना त्याग करती है? लेकिन यह जो धर्मभाव उसमें है, उसको घरके दायरेमें सीमित न रखकर हम बढ़ाना चाहते हैं—उसे समाजमें लाना चाहते हैं।

१८-९-'५३ —संथाल परगना

: १०१ :

हमारा देश बहुत प्राचीन और विशाल है। बहुत प्राचीन कालसे यहाँपर खेती हो रही है और लोग देहातोंमें रहते हैं। वैसे हिंदुस्तानमें शहर भी हैं और छोटे-छोटे गाँव भी। पर शहरोंकी संख्या बहुत थोड़ी है, और ये बहुत सारे शहर नये हैं। हाँ, काशी जैसा कोई पुराना शहर भी है, पर बाकी सारे दो सौ, तीन सौ और चार सौ सालके हैं। लेकिन गाँव तो हजारों सालसे बसे हैं। एक-एक गाँवका इतिहास किसीने लिख तो नहीं रखा, पर अगर लिखा जाय तो मालूम होगा कि कुछ गाँव तो हजार, दो हजार साल पुराने भी हैं। आज हिंदुस्तान और पाकिस्तानमें कुल सात लाख गाँव हैं। पुराने जमानेमें भी गाँवोंकी संख्या इतनी ही थी। हाँ, अब जनसंख्या कुछ बढ़ गयी है। पहलेके गाँव और भी छोटे थे। पर सारा देश जैसे आज गाँवोंसे भरा है, वैसे ही पुराने जमानेमें भी जिधर देखो उधर गाँव ही गाँव थे, नगर बहुत कम थे। अपने यहाँ मनुष्य हमेशा देहातमें रहा है और सारी प्रतिष्ठा गाँवकी रही है। वेदोंमें प्रार्थना है:

'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्।'

—'हमारे गाँवमें वृद्धि हो, हमारे गाँवमें सुख-समृद्धि हो, हमारे गाँवमें पुष्टि हो।' इस तरह ग्रामधर्मकी बात प्राचीन कालसे चली आयी है। प्राचीन कालमें हरएक गाँवमें अपना-अपना राज था। पाँच वर्णोंके प्रतिनिधियोंकी पंचायत बनती थी। जैसे पाँच अँगुलियाँ होती हैं, वैसी ही पंचायत होती थी और जैसे पाँचों अँगुलियाँ मिलकर काम करती हैं, वैसे ही वे मिलकर काम करते थे। 'पाँच बोले परमेश्वर' कहा जाता था।

अक्तूबर, '५३ —भेड़ियानाथ (भागलपुर)

: १०२ :

आज हम शरीर-श्रम करनेवालोंको नीच समझते हैं। इतना ही नहीं, आज हमने माताको भी नीच माना है। शास्त्र कहते हैं :

'उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥'

—'दस उपाध्यायोंकी बराबरीमें एक शिक्षक और सौ शिक्षकोंकी बराबरीमें एक पिता और हजार पिताओंसे भी बढ़कर है, एक माता।' माताका ऐसा गौरव है। यह शास्त्रोंकी बात है, पर आज तो हम स्त्रियोंको हीन मानते हैं। स्त्रियाँ खेतपर मजदूरीके लिए जाती हैं तो उन्हें कम मजदूरी दी जाती है। स्त्रियोंको तो ज्यादा देनी चाहिए, क्योंकि उन्हें घरका भी सब काम देखना होता है, बच्चोंका लालन-पालन करना होता है। पर, ज्यादा तो देते ही नहीं, बराबरीका भी नहीं देते। हर जगह स्त्रियोंको कम मजदूरी दी जाती है और उनको भार समझते हैं। 'स्त्रियाँ तो रात-दिन काम करती हैं, फिर भी उनका भार मालूम होता है, क्योंकि काम-की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। कहते हैं कि 'स्त्रियाँ उत्पादनका काम नहीं करतीं, सिर्फ रसोई करती हैं।' पर रसोई उत्पादनका काम नहीं तो क्या बढ़ईका काम उत्पादनका काम है? बढ़ई क्या करता है? काठ लेता और उससे नयी चीज बनाता है। वैसे ही स्त्री भी आटा लेकर रोटी बनाती है। अगर नयी चीज पैदा करनेको ही उत्पादन कहें तो ब्रह्मदेवके सिवा और किसी उत्पादक का हमें पता नहीं है। किसान क्या

करता है ? परमेश्वरकी पैदा की हुई चीज खेतमें बीजा और उससे हजार गुना पाता है, तो वह भी तो परमेश्वर ही करता है। काठकी कुर्सी और चमड़ेका जूता बनाना एक चीजका दूसरी चीजमें रूपान्तर करना ही तो है। हम कोई नयी चीज नहीं बना सकते, खुद ही बनाये गये हैं। हम 'कृति' हैं, 'कर्ता' नहीं हैं। जैसे काठकी कुर्सी बनाना काठका रूपान्तर करना है वैसे ही गेहूँका आटा बनाना, रोटी बनाना रूपान्तर ही है। क्या हम इसे उत्पादन तब समझेंगे जब हमारी माताएँ और बहनें कहेंगी कि 'हम रोटी बनायेंगे बशर्ते कि हमें अठारह आने रोज मिलें।'

नवम्बर, '५३ —जमालपुर (मुंगेर)

: १०३ :

हमारे समाजमें आलस्य और वैमनस्य—ये दो रिपु हैं, जिनसे छुटकारा पाना चाहिए।

'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।'

—'मनुष्यके शरीरमें पड़ा हुआ सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है।' हमने सबसे बड़े रोगको 'महारोग' कहा है, परन्तु वह भी उतना बड़ा रोग नहीं जितना बड़ा आलस्य है। हमारे यहाँके आलस्यने तो तत्त्वज्ञानका रूप ले लिया है। आलसी लोग हमें लिखकर पूछते हैं कि 'बाबाजी, आपको आत्मज्ञान हुआ नहीं दीखता, नहीं तो आप क्यों घूमते ?' हम कहते हैं: 'हाँ, हमें आत्मज्ञान नहीं हुआ है, यह ठीक है। अगर आत्मज्ञान हुआ होता तो हमारा शरीर टिकता नहीं, वह तो कभीका भगवान्के पास पहुँच जाता।' परंतु लिखनेवाला समझता है कि उसे आत्मज्ञान हो गया है। जो कुछ भी काम नहीं करता और घरमें बैठा रहता है, सबेरे-शाम थोड़ा-सा ध्यान कर लेता और समझता है कि हमें मुक्ति मिल गयी है—ऐसे लोगोंको क्या समझाया जाय ? आलस्यका भी एक तत्त्वज्ञान बना है। आलसी लोग शंकराचार्यका सहारा लेते और कहते हैं कि 'शंकराचार्यने हमें निवृत्ति सिखलायी है।' निवृत्ति क्या है, यह

समझनेकी बात है। इन लोगोंने मानसिक शांतिको निवृत्ति नहीं माना, शारीरिक शांतिको ही निवृत्ति माना है। तो फिर लाशको भी निवृत्त मानना होगा ? और ये जो पेड़, पत्थर हैं इनको तो सबसे अधिक निवृत्त मानना होगा। इस तरह हमने तमोगुणको निवृत्ति मान लिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि हम सत्वगुणको नहीं देखते।

१६-११-'५३ —शेरमारी बाजार (भागलपुर)

: १०४ :

भूदानका काम करते हुए हमें अपने दो मुख्य विचारोंकी ओर हमेशा ध्यान देना चाहिए। पहला विचार, सीलिंग नहीं, फ्लोअरिंगका होना चाहिए। और दूसरा विचार यह है कि नैतिक परिवर्तन होना चाहिए। अगर कानून बना तो हम समाजको उसे स्वीकार करनेके लिए ही कहेंगे, लेकिन जिसपर हमारा विश्वास है उसी विचारका अनुसरण करेंगे। हमारा विचार चाहे छोटा ही क्यों न हो, पर जो हमें जँचता है वही हमारे लिए स्वधर्म हो जाता है। गीतामें कहा गया है :

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥'

—'स्वधर्म विगुण हो तो भी उसका पालन श्रेय है।' परन्तु समझनेकी बात है कि वास्तवमें हमारा ही विचार श्रेष्ठ है, उसका स्वतंत्र मूल्य है। तथापि कम मूल्य हो तो भी स्वधर्मके नाते हम उसे छोड़ नहीं सकते. और न छोड़ना ही चाहिए।

२८-११-'५३ —पूर्णियाँ

: १०५ :

मिलका कपड़ा लोग इसलिए खरीदते हैं कि वह आँखोंको अच्छा लगता है। लेकिन जिस कपड़ेसे लोगोंकी बेकारी बढ़ती है, जिन कपड़ोंसे बहनें भूखों मरती हैं, वह कपड़ा क्या अच्छा है ? मैं समझता हूँ कि वह मुर्दोंका कपड़ा है। मुर्देपर कितना ही सुंदर कपड़ा क्यों न हो, वह मुर्देका होता है। हम समझते हैं कि मिलका कपड़ा मुर्दोंका कपड़ा है। कुछ लोग

कहते हैं कि खद्दरका कपड़ा महँगा होता है। लेकिन वह इसलिए महँगा होता है कि वह बेकारोंको खिलाता है। मिल केवल कपड़ा देता है, बेकारोंको खिलाता नहीं। अगर बेकारोंको खिलानेका सारा खर्च मिलपर पड़े तो खादीसे वह कपड़ा बहुत महँगा पड़ेगा, यह हिसाब लगानेपर मालूम हुआ है। लोगोंका कहना है कि खादी खरीदेंगे तो महँगी पड़ेगी। हम पूछते हैं कि आप कोई दान-धर्म करते हैं या नहीं? हम आपसे सिफारिश करते हैं कि आप वह सारा बन्द करके खादी पहन सकते हैं। शास्त्रोंने कहा है कि 'गुप्तदान श्रेष्ठ दान है।' खादी खरीदोगे तो वह दान तो नहीं दीखेगा, लेकिन वह गुप्तदान होगा और सरल दान भी होगा। हमारा आग्रहपूर्वक कहना है कि जो पूरी तौरपर खादी पहन सकते हों वे पूरी पहनें, लेकिन जो नहीं पहन सकते वे सोचें कि हम सालभर गरीबके नामपर कितना रुपया दे सकते हैं? दो रुपया दे सकते हैं, तो मैं कहूँगा—'ठीक है, आप दूसरा दानधर्म बन्द करें और चार रुपयेकी खादी पहनें, क्योंकि दो रुपया मिलके कपड़ेपर खर्च होता है और दो रुपया दानधर्ममें। अगर खाता-बही लिखते हैं तो उसमें लिखिये कि 'दो रुपये का कपड़ा लिया और दो रुपये का दानधर्म किया।' आपको अगर देशकी माँ-बहनोंको जिन्दा रखना है, तो कुछ-न-कुछ धर्म करना ही होगा। अगर हम इस तरह धर्म करते हैं तो गरीब बेकार नहीं बनेंगे। अगर हम किसीको दो रुपये उठाकर दे देते हैं तो वह आलसी बन जाता है। भीष्म पितामह समझा रहे हैं—

'दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरं धनम्।'

—'गरीबके पास पैसा पहुँचा दो, अमीरके पास नहीं।' ये कम्युनिस्ट और प्रजासमाजवादी हमसे कहते हैं कि 'हम संघर्ष करना चाहते हैं, अमीरोंसे हमारा विरोध है।' हम उनसे कहते हैं—'काहेका संघर्ष चला रहे हो? अमीरोंको तो आपकी मदद हो रही है, क्योंकि आप मिलका कपड़ा पहनते हैं।' शास्त्रोंनें कहा है कि अमीरके पास पैसा मत पहुँचाओ और गरीबके पास पहुँचाओ। लेकिन ये लोग तो आज इन दोनों आज्ञाओंको

भंग कर रहे हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि कि गरीब प्रतिदिन अधिक गरीब बनते जा रहे हैं और अमीर प्रतिदिन अधिक अमीर। खादी पहनोगे तो गरीब के पास पैसा पहुँचेगा और हिंदुस्तान सुखी होगा।

२२-१२-'५३ —मेघपुर (दरभंगा)

: १०६ :

सरकारके पास मालकियतके हकके कागजोंका ढेर है। लेकिन समाजको ऐसी हिम्मत आ जाय कि यह जो सारा पुराने कागजोंका ढेर है, उसे जलाया जाय। अब होली आ रही है। उस होलीमें अगर यह ढेर जलाया जायगा तो हिंदुस्तानमें धर्मका प्रकाश फैलेगा। लकड़ी जलाकर क्या होली करते हो? होलीमें हृदयके मोह, लोभको जलाओ। शास्त्रोंने कहा है कि 'हर वसंत ऋतुमें होली करो और उसमें अपने हृदयके मोहको जलाओ'—

'वसंते वसंते ज्योतिषा यजेत।'

इस तरह होली होती है तो उसमेंसे यज्ञपुरुष पैदा होता है, तब धर्मका प्रकाश फैलता है। हम तो आग लगानेवाले हैं। हम पहले आग लगाना चाहते हैं, उसके बाद निर्माणका काम होगा। निर्माणका काम पहले नहीं हो सकता। जहाँ अग्निनारायण प्रकट हो वहीं नवनिर्माणका आरंभ होता है।

इसलिए हम तो पहले आग लगायेंगे और बादमें निर्माण करेंगे। सरकारके पास जो रेकार्ड पड़े हैं, वे सारे खत्म होनेवाले हैं। जहाँ क्रान्ति होती है वहाँ पुराने रेकार्डोंको बचाकर नहीं होती। क्रान्ति आती है तो रेकार्ड बचते नहीं, सब खत्म हो जाते हैं। तो फिर ऐसी क्रान्ति के समय कौन-सी चीज बचानी है? शास्त्रोंने कहा है:

'वेदान् उद्धरेत।'

—'वेदोंको बचाओ, बाकी सब डूबने दो।' एक कहानी है कि प्रलयके समय मत्स्यावतार हुआ, जिसके द्वारा वेदोंको बचाया गया। वेदोंको बचानेका मतलब क्या है? उसका मतलब यही है कि अन्तर्ज्ञानको बचाना और बाकी सब पुरानी चीजोंको डुबाना।

१८-१२-'५४ —जामताड़ा (संथाल परगना)

: १०७ :

हमारे पास जो कुछ संपत्ति, बुद्धि और शक्ति है, वह सब समाजके लिए है। हमें अपने पास कोई चीज रखनेका अधिकार नहीं है, समाजके पास रखनेका अधिकार है। समाजको सब कुछ अर्पणकर फिर समाजसे प्रसादरूपमें लेनेका ही अधिकार है। हमने जो कुछ कमाया, वह भगवान्‌की शक्तिसे ही कमाया। इसलिए सब कुछ उसीका है। अबतक हम लोग पत्थरकी मूर्तिके सामने भोग चढ़ाते थे और फिर प्रसाद ग्रहण करते थे। वह भगवान् तो खाता नहीं था। पर अब भगवान्‌को भूख लगी है तो भक्त बनकर उसे खिलाना चाहिए। अब मूर्तिके सामने थाली रखनेका नाटक क्यों करते हो? भगवान् बोलते हैं—'जिसने भूखोंको खिलाया उसने मुझे खिलाया, जिसने प्यासेको पानी पिलाया; उसने मुझे पानी पिलाया और जिसने ठंढमें ठिठुरनेवालेको कपड़ा पहनाया, उसने मुझे कपड़ा पहनाया।'

भक्तका हृदय ऐसा होता है कि वह सिर्फ प्रसाद ही ग्रहण कर सकता है। तो अब आप भगवान्‌को खिलाते जाइये और फिर खाते जाइये—देते रहिये और खाते रहिये।

'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।'

इस तरह भोग करोगे, तो भगवान् उस भोगसे प्रसन्न होगा। जंगलमें जाकर तपस्या करनेकी कोई जरूरत नहीं है। भगवान्‌को अर्पण करके खाओ तो वह खाना भी भक्ति बन जायगा। इस तरह जो खाता है, उसका खाना यज्ञकी अहुति बन जाता है। वह मामूली खाना नहीं रहेगा, बल्कि प्रसाद-सेवन होगा।

१८-१२-'५४

—जामताड़ा (संथाल परगना)

: १०८ :

जिस तरह पुराने जमानेमें एक लोकभ्रम था कि 'यह कलियुग है और इसमें पाप करना लाजिमी है', उसी तरह आज भी एक लोक-भ्रम फैला हुआ

है कि 'यह तो यंत्रयुग है।' लेकिन हमें इन भ्रमोंसे मुक्त होना चाहिए और भूदानमूलक, ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक क्रान्तिके विचारको समझ लेना चाहिए। हिंदुस्तानका उद्धार ग्रामोद्योगसे ही हो सकता है। लेकिन एक भ्रम फैला है कि 'इस यंत्रयुगमें ग्रामोद्योग कैसे चलेंगे। सारी दुनिया एक ओर जा रही है, तो हम दूसरी ओर कैसे जा सकते हैं? हम मानते ही नहीं कि दुनियामें हमारी भी कोई हस्ती है। लेकिन जिस तरह बाहरके विचार यहाँ आ सकते हैं उसी तरह हम यहाँके विचार भी बाहर भेज सकते हैं। यह हिम्मत हममें होनी चाहिए कि हम अपने विचार बाहर भेजेंगे। कविने कहा है:

'प्रथम सामरव तव तपोवने।'

—'जब सारी दुनिया अंधकारमें थी, तब यहाँ ज्ञानका प्रकाश फैला था, यहाँके तपोवनोंमें अध्ययन चल रहा था, तत्त्वज्ञानका निर्माण हो रहा था।' इसलिए हमें ऐसे लोकभ्रमोंको खत्म करना चाहिए, क्योंकि उनसे मनुष्यकी सारी शक्ति खत्म हो जाती है। इसलिए वेदांतने कहा है कि 'सबसे श्रेष्ठ शक्ति कोई है, तो वह है—'सम्यक् ज्ञानम्'। इसलिए हम हिम्मत न हारें और ज्ञान हासिल करें। दुनियामें जो दूसरे-दूसरे विचार चलते हैं, उनके भ्रममें न उलझें और अपना विचार कायम रखें, अपनी बुद्धि कायम रखें। इसीलिए आचार्य चाणक्यने कहा था—

'बुद्धिस्तु मा गान् मम।'

—'मेरी बुद्धि न जाय।' और सब जाय, पर बुद्धि न जाय। यही बात भगवान्ने गीतामें कही है:

'बुद्धौ शरणम् अन्विच्छ।'

—'बुद्धिकी शरण जाओ। दुनियामें यह जो सारी अबुद्धियाँ चलती हैं, उनमें हम न पड़ें और अपनी बुद्धि कायम रखें।'

१९-१२-'५४ —गेड़िया (संथाल परगना)

: १०९ :

आज जो समाज-व्यवस्था बनी है, उसमें सत्तावाद चलता है। पतिको लगता है कि पत्नीपर मेरी सत्ता चले। माता-पिताको लगता है कि बच्चोंपर हमारी सत्ता चले। गुरु चाहता है कि शिष्योंपर उसकी सत्ता चले। इस तरह सत्ताकी, आज्ञाकी बात चलती है। पर यह क्यों नहीं होता कि माता-पिता बच्चोंको सलाह दें, आज्ञा न दें? गुरुको ऐसा क्यों लगता है कि शिष्यको उसकी आज्ञा माननी चाहिए?

हिंदुस्तानमें ही ऐसे अजीब गुरु हो गये हैं, जो अपने शिष्योंसे कहते थे कि हमारी आज्ञा ठीक हो, तभी मानो। हिंदुस्तान का गुरु अपने शिष्यसे कहता है:

'यानि अस्माकं सुचरितानि, तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।'

—'हमारे जीवनमें जो अच्छाई हो, वही ग्रहण करो। और जो अच्छाई नहीं है, उसे मत ग्रहण करो। हमने जो बुरे काम किये होंगे, उनको नहीं लेना।' यह है, निरहंकार सेवा। गुरुको यह अहंकार नहीं होना चाहिए कि शिष्यको मेरी बात माननी चाहिए।

२०-१२-'५४

—कैवटजाली (संथाल परगना)

: ११० :

भूदान-यज्ञमें काम करनेवाले एक भाईने हमसे कहा कि "हम एक राजनैतिक पक्षके नामसे जमीन माँगते हैं तो दूसरे पक्षवाले नाराज हो जाते हैं।'....क्या आपने रामजीका नाम नहीं सुना? उन्हींके नामसे माँगो, किसी पक्षके नामसे माँगनेकी क्या जरूरत है? परंतु आजकल रामजीका नाम तो गायब ही रहता है। हर कोई अपनी-अपनी सत्ता चलाना चाहता है। कहीं-कहीं तो लोगोंने चाहा कि हमारी संस्थाके जरिये इतने दानपत्र मिले, यह जाहिर हो जाय।....बिल्कुल बच्चोंकी-सी हालत है यह! ऐसी हालतमें समाजकी सच्ची सेवा नहीं हो सकती। सेवाका केवल नाम

होता है और अपना अहंकार, भोगवासना—यह सब तो रहता ही है। उससे पुण्यकी सुगंध नहीं फैलती। शास्त्रोंने कहा है :

'पुण्यस्य कर्मणः दूरात् गंधो वाति।'

—'पुण्यकी सुगंध दूरसे फैलती है।' वास्तवमें सुगंध हो तो वह दूरसे ही फैलती है। इसीलिए संतोंने कहा है कि निरहंकार भावसे नम्र होकर सेवा करनी चाहिए।

अहंकार छोड़कर काम करना चाहिए, तभी भूदान-यज्ञ बहुत जोर करेगा। हम भगवान्से यही वरदान चाहते हैं कि हमारे भाई निरहंकार भावसे काम करें। अगर यह गा तो जितनी जमीन मिलेगी उतना हृदयपरिवर्तन होगा। वह सारा दान पावनताका प्रतीक होगा और 'इतना समाज बदला' यह कहा जा सकेगा। आज हम यह नहीं कह सकते कि 'साराका सारा दान हृदय-परिवर्तनसे प्राप्त हुआ है।' परंतु परमेश्वरकी कृपासे कुछ तो दान हृदय-परिवर्तनका प्रतीक जरूर है। अगर सारा इसी तरहसे हो जाय तो भूदान-यज्ञ बहुत जल्दी सफल होगा। मेरी भगवान्से यही प्रार्थना है कि 'तू हमें ऐसी बुद्धि दे कि इस कार्यके निमित्तसे सारे समाजकी शुद्धि हो। शुद्धि होगी तो फिर सारे मसले हल हो जायँगे।

२०-१२-'५४ —केवटजाली (संथाल परगना)

: १११ :

शास्त्रकारोंने कहा है :

'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः।'

—'धर्म, अर्थ, काम-सेवन सबको एकसाथ मिलकर समान भावसे करना चाहिए।' यह नहीं हो सकता कि चंद लोगोंको धर्मकी तालीम मिले और चंद लोगोंको न मिले। सबको धर्मकी तालीम मिलनी ही चाहिए। धर्मरत्नकी प्राप्ति हरएकको होनी चाहिए। गुणविकासका मौक़ा हर एकको मिलना चाहिए। धर्मका समान भावसे सेवन करनेका यही मतलब है। अर्थका समान भावसे सेवन करनेका मतलब है कि हरएककी जीवन-

को आवश्यकताएं समान रूपसे पूरी होनी चाहिए। कामका समान भावसे सेवन करनेका मतलब है कि हरएकको कामवासनाका उचित और मर्यादित भोग करनेका अवसर प्राप्त होना चाहिए।

'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः'—यह सामाजिक जीवनका सूत्र है। इस तरहसे धर्मशिक्षण, अर्थलाभ और कामतृप्तिकी योजना हो तो समाजकी बहुत सारी समस्याएँ हल हो जायँगी। इसके अलावा यह योजना करनेके बाद समाजको यह तालीम देनी चाहिए कि काम और अर्थ तुच्छ वस्तु हैं। मुख्य वस्तु तो यह है कि 'हरएक को आत्माका दर्शन हो।' जिसे हम 'मोक्ष' कहते हैं वह सबको प्राप्त हो सके, सब उसके लिए कोशिश करें। इस तरह समाजमें धर्म, अर्थ, कामके समान सेवनकी योजना करनेके बाद सारे समाजको मोक्षपरायण बनाना चाहिए।

६-२-'५५

—बालेश्वर (उत्कल)

श्लोक और सूत्र

(पुस्तकमें आये हुए श्लोकों और सूत्रोंकी सूची)

श्लोक या सूत्र	परिच्छेद–संख्या
अक्कोधेन जिने कोधं	२५
अग्ने नय सुपथा राये	५
अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते	७६
अत्युत्कटैः पापपुण्यैः	७७
अथवा योगिनामेव कुले	३०
अदित्सन्तं चित् आघृणे	५६
अदेशकाले यद्दानमपात्रे	६१
अद्य अद्य श्वः श्वः	८९
अद्वेष्टा सर्वभूतानां	३३
अन्धं तमः प्रविशन्ति	८०
अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः	७८
अपि चेत् सुदुराचारो	२६
अवद्य भिया वहवः प्रणन्ति	७४
अविनयमपनय विष्णो	९१
अष्टादशपुराणानां	२९
असतो मा सद्गमय	९६
आत्मा सत्यकामः, सत्यसंकल्पः	५२
आलस्यं हि मनुष्याणां	१०३
इन्द्राय इदं न मम	३५
उपाध्यायान्दशाचार्यः	१०२
उद्धरेदात्मनात्मानं	७३
उद्योगिनं पुरुषसिंह	४१
उर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं	६५
एकं सत् विप्राः वहुधा वदन्ति	१०
एवं प्रवर्तितं चक्रं	२८
एतद्देशप्रसूतस्य	११,४६
ॐ सह नाववतु	३७
कर्मण्येवाधिकारस्ते	५३
कलौ दानं च नामं च	५८
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते	३२
कविः क्रान्तदर्शीः	८८
कृपमित् कृपस्व	८१
गगनं गगनाकारं	७०
गामाविश्य च भूतानि	४०
गुणाधिकैर्हि गृहीतः	८४
गृहीत इव केशेषु	६७
'जनको जनक' इति वै जना	८६
जप्येनैव तु संसिद्धेत्	४२
तत्त्वमसि	१३,१४,६३
तद् दूरे तद्वदन्तिके	५१
तत् सूर्यस्य देवत्वं	४९
तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व	४
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः	१०७
दरिद्रान् भर कौन्तेय	१०५
दातव्यमिति यद्दानं	६१
दानं भोगो नाशः	२
दानं संविभागः	३
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वम्	६८

श्लोक या सूत्र	परिच्छेद संख्आ
दुर्लभं भारते जन्म	७८
दुःखेन साध्वी लभते सुखानि	२२
देवान् भावयतानेन	६६
धर्मस्य त्वरिता गतिः	६२
धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः	१११
धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः	७
न कर्मणा न प्रजया	१६
न जातु कामः कामानां	२१
न मे स्तेनो जनपदे	३६, ९७
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा	२४
न हि वेरेण वेराणि	८
न हि ज्ञानेन सदृशं	१५
नायं हन्ति न हन्यते	७२
नाहं विभेमि	१२
नाहं वसामि वैकुण्ठे	३९, ८२
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्	५४
नैतां विहाय	१२
परगुणपरमाणून्	८३
पुण्यस्य कर्मणः दूरात्	११०
पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः	६०
पूर्णमदः पूर्णमिदम्	१४, ९४
पंचविशः पंचआरीः	३८
प्रजा कालस्य कारणम्	४३
प्राणाच्चैव अपानाच्च	१००
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं	९९
बुद्धिस्तु मा गान् मम	१०८

श्लोक या सूत्र	परिच्छेद संख्या
बुद्धौ शरणं अन्विच्छ	१०८
ब्रह्मदाशा, ब्रह्मदासा	४७
मनुष्यत्वम्, मुमुक्षुत्वम्	९२
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः	१७
मित्रस्य मा चक्षुषा	९
मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः	२८
य एनं वेत्ति हन्तारं	४५
यथापि भमरो	६९
यदि ह्यहं न वर्तेयं	४८
यत्र योगेश्वरः कृष्णो	६
यज्ञशिष्टामृतभुजो	२३
यः अर्थशुचिः सः शुचिः	४४
यानि अस्माकं सुचरितानि	१०९
यावान् वा अयमाकाशः	१८
युवा सुवासाः परिवीत	७९
यो जागर तं ऋचः	९७
राजा कालस्य कारणम्	४३
राज्यान्ते नरकप्राप्तिः	९०
वसंत इन्नु रंत्यो	६४
वसंते वसंते ज्योतिषा यजेत्	१०६
वाच्यार्था निहिताः सर्वे	९३
विद्यां च अविद्यां च	५५
विपदः सन्तु नः शश्वत्	३१
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्	१०१
वेदान् उद्धरते	१०६
वैवस्वते मन्वंतरे	८

श्लोक या सूत्र	परिच्छेद संख्या
पष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः	१९
शतहस्त समाहर	७१
श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्	५७
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः	१०४
सत्यमेव जयते	५९
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात्	८७
सदा शुचिः कारुहस्तः	२०
समानीव आकूतिः	३७
समानो मंत्रः समितिः समानी	२७
समानं सर्वभूतेषु	८५
स य एषोऽणिमा	१३
सर्वधर्मान् परित्यज्य	५०
सर्वनाशे समुत्पन्ने	६२
सर्वभूतस्थमात्मानं	१
सर्वभूतहिते रताः	९४
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म	७०
स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु	९५
साप्तपदीनं सख्यम्	८२
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः	८५
हिरण्मयेन पात्रेण	३४

विनोबा-साहित्य

सर्वोदयकी ओर—अहिंसक समाज-निर्माण तथा समन्वय संबंधी भाषण ।)
भूदान-प्रश्नोत्तरी—भूदान संबंधी प्रश्नोत्तर ≡)
धर्म-चक्र-प्रवर्तन—भूदान-आंदोलन संबंधी प्रवचन ।)
भगवान्के दरबारमें—जगन्नाथ पुरीमें मंदिर-प्रवेश संबंधी दिये गये प्रवचन ≈)
साहित्यिकोंसे—साहित्यिकोंके बीच दिये गये प्रवचनों, प्रश्नोत्तरोंका संकलन ॥)
विनोबा-प्रवचन—पूर्णियाँ (विहार) जिलेमें किये गये प्रवचनोंका संकलन ।॥)
भूदान-यज्ञ (हिंदी-अंग्रेजी)—भूदान-यज्ञके उद्भव और विकास संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रवचनोंका संकलन हिंदी १।) अंग्रेजी १॥)
Swarajya-Shastra (English) १)

(सस्ता-साहित्य-मंडल द्वारा प्रकाशित)

गीता-प्रवचन—प्रत्येक अध्यायका सरल, सुबोध शैलीमें विवेचन १)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन—स्थितप्रज्ञके लक्षणोंकी व्याख्या १॥)
ईशावास्यवृत्ति—ईशोपनिषद्की विस्तृत टीका ।॥)
ईशावास्योपनिषद्—मूल श्लोकों सहित ईशोपनिषद्का सरल अनुवाद ≈)
शांति-यात्रा—गांधीजीके देहावसानके बाद अनेक स्थानोंपर दिये गये प्रवचन १॥)
जीवन और शिक्षण—युवकोपयोगी लेखों तथा भाषणोंका संग्रह २)
विचार-पोथी—विनोबाजीके चुने हुए मूल्यवान् विचार १)
स्वराज्य-शास्त्र—स्वराज्यकी परिभाषा, अहिंसात्मक राज्य-पद्धति एवं आदर्श राज्यव्यवस्थाका विवेचन ।॥)
गाँव सुखी, हम सुखी—ग्राम स्वावलंबन और समाज-दर्शन संबंधी प्रवचन ≈)

विनोबाजीकी ग्राम सेवामंडल, गोपुरी वर्धा द्वारा प्रकाशित ये पुस्तकें मराठी-में भी हमारे यहाँसे उपलब्ध हैं।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी • मगनवाड़ी, वर्धा

१०८

सर्वोदय स्वाध्याय योजना

प्रतिवर्ष

किसी भी भाषा का एक भूदान साप्ताहिक जिसका
वार्षिक शुल्क तीन रुपये हो

और

हिंदी का २५०० पृष्ठों का सर्वोदय-साहित्य
केवल दस रुपयों में

प्राप्त करने की सस्ती और लोकप्रिय योजना
सदस्य बनिये और बनाइये